तृतीय अध्याय

जगदीशचंद्र माथुर के नाटकों के प्रमुख पात्र

तृतीय अध्याय

''जगदीशचंद्र माथुर के नाटकों के प्रमुख पात्र''

प्रास्ताविक -

जगदीशचंद्र माथुर के विषय की परिधि विस्तृत है। इसी कारण उन्होने पात्रों का चयन पुराण, इतिहास के विस्तृत क्षेत्र से किया है। ये पात्र विभिन्न वर्गों एवं जातियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। पात्र कथावस्तु के सजीव संचालक होते हैं। पात्र एक ओर साधक है तो दूसरी ओर साध्य भी है। अपने नाटकों की पात्र चयन में माथुर जी ने अतिशयपूर्ण मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रदर्शित की है। उनके अधिकांश पात्र उपदेश न देकर नियति को भोगते हुए अधिक प्रतीत होते हैं। माथुर जी के सभी पात्र विकासशील हैं।

जगदीशचंद्र माथुर के पात्रों को दो वर्गों में विभाजित किया है- (1) पुरुष वर्ग, (2) स्त्री वर्ग। उनके नाटकों में पात्रों की संख्या संतुलित है। 'कोणार्क' - 15 पात्र, 'पहला राजा'- 17 पात्र और 'शारदीया' 13 पात्र।

नाट्य शास्त्र के अनुसार नाटकीय कथावस्तु को आगे ले जानेवाला प्रधान पात्र नायक कहलाता है। धनंजय के अनुसार उसे विनीत, मधुर, त्यागी, दक्ष, प्रियवंदा, शुचि, रक्तलोक, युवा, स्थिर, लोकप्रिय, स्मृति संपन्न, उत्साही, बलवान, आत्मसम्मानी, शूर, दृढ़, तेजस्वी, धार्मिक नेता होना चाहिए। आचार्यों ने स्वभाव भेद से चार प्रकार के नायकों की कल्पना की है। धीर प्रशांत, धीरोदत, धीरोदात्त, दीरललित। माथुर के नाटकों के मुख्य पात्र कथावस्तु के केंद्र में स्थित होकर निरंतर कर्मरत, बल के प्रति अनासक्त और असीम शक्ति के आश्रय होने पर भी, अपनी वैयक्तिक और सामाजिक परिस्थितियों से निरंतर जूझते हुए, जीवन व्यतीत करते हुए दिखाई देते हैं। वे किसी एक वर्ग के प्रतिनिधि बनकर सत्-असत् के संघर्ष में कूद पड़ते हैं। उनके नाटकीय पात्र युग भावना के विराट प्रतिनिधि हैं। 'कोणार्क' में 'धर्मपद' और 'विशु' कला की दो युग प्रवृत्तियों के द्योतक बनकर आए हैं। 'शारदीया' में नरसिंहराव के चरित्र के द्वारा मानवतावादी दृष्टि, अर्थात् हिंदू मुस्लिम एकता की दृष्टि दिखाई देती है। काफी हद तक वह

गांधीवादी युग का प्रतिनिधि पात्र है। पहला राजा की अवधारणा में समस्त मानवता के कल्याण की भावना है। 'पृथु' सारे युग का प्रतिनिधि है। माथुर जी पात्र को विचार और समस्या से जोड़ने में विश्वास रखते हैं। इसके साथ ही भाव प्रवणता, कल्पनाशीलता, स्वप्नदर्शिता उनके पात्रों की मुख्य विशेषता है। विशू, धर्मपद, नरसिंहराव, बायजाबाई, पृथु और कुछ ऐसे ही पात्र हैं। उपरोक्त विशेषताओं के कारण माथुर के नाटकों में विशिष्ट ही नहीं साधारण से साधारण पात्र भी अपने विशिष्ट रंगों में उभरते हैं। 'शारदीया' की रहीमन, सरनाबाई, सरदार जिन्सेवाले, 'कोणार्क' के सौम्यश्री दत्त, शैवालिक, 'पहला राजा' के सूत, मागध, सुनीता, दासी आदि।

इसके साथ ही ऐसे पात्र भी माथुर के नाटकों में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं जो नाटक में चर्चित मात्र हैं, पर मंच पर उपस्थित नहीं होते। इनमें 'कोणार्क' की सारिका, 'शारदीया' में गोविंदराय काले, 'पहला राजा' में भूचंडिका। इतिहास उनके पात्रों के लिए सूत्र है, रूप नहीं। कल्पना के सामने ऐतिहासिक सत्य की खोज निरर्थक हो जाती है। कल्पना भी ऐतिहासिक सत्य की खोज में निरर्थक हो जाती है, किंतु कल्पना भी ऐतिहासिक सूत्र की दिशा में उड़ान भरती है। पात्रों में दोनों का मिश्रण मिलता है। लेकिन जहाँ तक प्रतीक पात्रों का प्रश्न है, वे 'पहल राजा' में ही आए हैं।

अ) प्रमुख पुरुष पात्र -

1.1 विशु -

1.1.1 महान कलाकार विशु -

विशु एक महान कलाकार है। महाशिल्पी विशु की निखरी हुई कला का अभूतपूर्व चमत्कार है भगवान सूर्य का जगमगाता हुआ पुण्य धाम कोणार्क। वह पूर्वी सागर के तट पर उदित हो रहा है। बारह सौ शिल्पियों और बारह सौ मजदूरों की लंबी साधना और कठोर मेहनत का परिणाम है यह मंदिर। इस मंदिर में जो मूर्तियाँ हैं, वे महाशिल्पी विशु के व्यक्तिवादी सौंदर्यदृष्टि की उपज है। वह कहता भी है, ''कोणार्क सारे जीवन का प्रतिबिंब है। देखो हमारे कोणार्क देवालय को आँखें भर-भरकर देखो। यह मंदिर नहीं, सारे जीवन की गतिविधियों का रूपक है। हमने जो मूर्तियाँ इसके स्तंभों, इसकी उपपीठ और सुधिस्तान में अंकित की है उन्हें ध्यान से देखो।

देखते हो, उनमें मनुष्य के सारे कर्म, उसकी सारी वासनाएँ, मनोरंजन और मुद्राएँ चित्रित हैं। यही तो जीवन है।''[1] विशु के अनुसार कला की श्रेष्ठता उसकी उपयोगिता में नहीं बल्कि उसके सौंदर्य पर निर्भर करती है। चयन हमेशा संस्कार पर निर्भर होता है। ''कला की पूर्ति चयन में है - छाँटने में है। जंगल में तरह-तरह के फूल-पौधे चाहे जहाँ उगे रहते हैं, लेकिन उपवन में माली छाँट-छाँटकर सुंदर और मनमोहक पौधों और वृक्षों को ही रखता है।''[2] विशु निरंतर सौंदर्य साधना कलाकार का दायित्व मानकर यथार्थ से पलायन करता है। जीवन के यथार्थ से पलायन कलाकार के लिए समर्थनीय स्वीकार करता है। उसके अनुसार बाहर कितना भी उत्पात मचे कलाकार उसके प्रति कुछ न सोचे, क्योंकि- ''राज्य की बातों में पड़ना शिल्पियों के लिए अनुचित है।''[3] पूरे राज्य में अकाल पड़ा है, राजनैतिक-गुंड़ों से जनता ही नहीं, 1200 शिल्पी भी आतंकित हैं, उनकी जमीन छीनी जा रही है, कईयों की स्त्रियों को दासियों की तरह काम करना पड़ रहा है। कुल मिलाकर चारों ओर अत्याचार और अकाल की लपटें बढ़ रही हैं और शिल्पी एक शीतल और सुरक्षित कोने में यौवन और विलास की मूर्तियाँ बनाते हुए कला और जीवन की सार्थकता महसूस करने लगा है। यहाँ 'विशु और उसका कोणार्क' अपने यथार्थ से मुँह मोड़कर मात्र काल्पनिकता में जी रहे हैं। वह प्रेम, श्रृंगार और उसके उदात्तीकरण पर अपनी कला की सार्थकता महसूस कर रहे हैं।

विशु के विचार में राजनीति से कलाकार का कोई संबंध नहीं - ''किसी की शक्ति बढ़े और किसी की घटे, हमें तो कोणार्क पूरा करना है।''[4] विशु न केवल महान कलाकार है, बल्कि उसका संपूर्ण अस्तित्व ही कला साधना के लिए समर्पित है। मंदिर निर्माण और मूर्तिकला में वह सिद्ध हस्त है। विशु एक भावुक कलाकार, सहनशील व्यक्ति तथा आत्माभिमानी है।

विशु का प्रवेश नाटक के प्रथम अंक में होता है। विशु उत्कल राज्य के प्रधान शिल्पी के पद से विभूषित है किंतु उसका रहन-सहन अत्यंत सादा और शालीनतापूर्ण है। विशु एक सच्चा कलाकार है। कला के प्रति उसका संपूर्ण समर्पित भाव नाटक में सर्वत्र देखने को मिलता है। कला की सर्वांग सुंदरता को ही वह जीवन की सार्थकता मानता है। कोणार्क मंदिर में कलश स्थापित न हो पाने से वह काफी चिंतित है। उसकी यह चिंता एक सच्चे कलाकार की मानसिक स्थिति को उजागर करता है। अपने इस सुंदरतम निर्माण को अधूरा रहते देखकर व्याकुल

हो उठता है। अपने मित्र नाट्याचार्य सौम्यश्रीदत्त से वह कहता है- ''कह नहीं सकता पर एक बात अवश्य है, हमने पत्थर में जान डाल दी है। उसे गति दे दी है। वह भूल रहा है कि वह धरती का पदार्थ है। उसके पैर धरती पर नहीं टिकते, पत्थर का यह मंदिर आज कल्पना के स्पर्श से हवा की तरह गतिमान, किरण की तरह स्पर्शहीन, सुगंध की तरह सर्वव्यापी हो रहा है। लेकिन धरती उसे जकड़े हुए है, ईर्ष्या से। ....मुझे लगता है, जैसे- अनजाने ही हम लोगों ने पृथ्वी और आकाश के बीच.... भीषण संघर्ष खड़ा कर दिया है।''[5] अंत में विशु यह भी कहता है कि यदि कोणार्क पूरा नहीं हुआ तो वह उसे नष्ट कर देगा। जब विशु धर्मपद नामक युवा शिल्पी के संबंध में राजीव से जानता है कि वह विद्रोही युवक है तब वह कहता है कलाकार का विद्रोही होना उचित नहीं। वह कलाकार को कला का एक मात्र उपासक मानता है। विशु अपनी शिल्प कला के प्रति इतना समर्पित है कि वह कला को ही अपना जीवन मानता है। वह कला को श्लील और अश्लील के घेरे के परे मानता है। उसने मंदिर के स्तंभों, उपपीठ आदि कई भागों पर मनुष्य जीवन की सारी कामवासनाएँ, मनोरंजन और मुद्राएँ चित्रित की हैं। सारे जीवन का प्रतिबिंब मंदिर पर अंकित किया गया है। कलश स्थापन के अवसर पर धर्मपद की उचित सलाह के लिए उसे अपना प्रधान शिल्पी का पद सौंपने को तत्पर हो उठता है। उस वक्त विशु धर्मपद से कहता है- ''अगर कोणार्क पूरा हो जाता है तो एक दिन क्या सभी दिनों के लिए वे अधिकार तुम्हारे हो जाएँगे। मैं तुम्हें अपने स्थान पर प्रधान शिल्पी बना दूँगा।''[6] विशु निरंतर सौंदर्य-साधना कलाकार का दायित्व मानते हुए जीवन के विरूप पक्ष और यथार्थ परिवेश की विरूपता से पलायन कलाकार के लिए समर्थनीय स्वीकार करता है। उसके अनुसार बाहर कितना भी उत्पात मचे कलाकार उसके प्रति कुछ न सोचे।

अंत में मानवीय संबंधों के परिप्रेक्ष्य में विशु की चेतना जाग उठती है। शोषक राजराज चालुक्य से कला और कलाकार की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए वह चरम प्रतिकार लेता है। कलाकार का सुषुप्त पौरुष जागृत होता है।

1.1.2 कायर विशु -

कोणार्क नाटक का प्रमुख पात्र है विशु। उड़ीसा राज्य की प्रधान शिल्पी है वह। उन्होने ही कोणार्क के सूर्यमंदिर का निर्माण किया। लेकिन महाशिल्पी विशु चिंतित है क्योंकि मंदिर

के शीर्ष पर दस दिनों की लगातार चेष्टा से भी कलश स्थापित नहीं कर पाए हैं। महामात्य चालुक्य के धमकी से वह डर जाता है। विशु का जीवन मूल्य यथार्थ से पलायन, कायरता और आत्मगोपन की कींच से पनपनेवाली प्रेम और सौंदर्यमयी कल्पना है। विशु जीवन की कायरता का प्रतीक है। विशु एक बार गर्भवती प्रेयसी को कायरतावश छोड़कर भाग आया और उसकी क्षतिपूर्ति शिलाओं में उसकी मूर्ति गढ़कर करता रहा। वह तब भी कायरता दिखलाता है जब धर्मपद युद्ध भूमि में प्रत्यक्ष युद्ध करता हुआ वीरगति पाता है, तब वह छुपकर चुंबक का पत्थर तोड़कर शत्रुओं का नाश करता है, पर सम्मुख युद्ध नहीं करता। न वीरगति प्राप्त करता है। उसकी कायरता तब भी उल्लेखनीय है जब धर्मपद शिष्ट शब्दों में ही सही पर शासन की विसंगति, चालुक्य के हर अत्याचार को निर्भीक भाव से नरसिंह देव के समक्ष उजागर करता है और विशु उसे या तो चुप रखने या नरसिंहदेव की चापलुसी करने में व्यस्त रहते हैं, क्योंकि विशु में वह पौरुष नहीं जो सीधे संघर्ष को झेल सके। विशु का चरित्र अपनी वास्तविकता में प्रभावित करता है। विशु समाज के लोगों के व्यंग्य-बाणों के डर से अपनी जीवन-प्रिय प्रेयसी और अजात पुत्र को छोड़कर भाग सकता है, जो सम्मुख में किए जा रहे अमात्य के अपमानों को पी सकता है।

1.1.3 यथार्थ से पलायन करनेवाला विशु -

कला को विशु जीवन मानता है। मंदिरों के निर्माण के माध्यम से उदात्त आदर्श दार्शनिक अभिव्यक्ति की कामना करता है, शिल्प कला के अत्युच्च कोड़ी पर आ पहुँचे हैं। लेकिन उसकी इस कला में उसकी निजी दमित कामनाओं की अभिव्यक्ति भी है। प्रथम अंक के आरंभ में नाट्याचार्य सौम्यश्री प्रतिदर्शी बनाकर विशु जो मूर्ति बनाता है, उसके गले के कंठभरण के बीच कंकण पर कामदेव की मनोहर छवि अंकित करता है। यह उसके मात्र सौंदर्य बोध का परिचायक नहीं बल्कि एक दमित भावजन्य पीड़ा की अभिव्यक्ति है। सौम्यश्री द्वारा 'कुंती सूर्यदेव' की संयोग वियोग श्रृंगार से आप्लावित संगीतजज्ञ की कथा सुनने के बाद पीड़ा और संघर्ष बनकर प्रकट होती है। जिस तरह "क्षितिज पर सबेरे की अरुणिमा की भाँति तेजस्वी सूर्यदेव का मादक स्वरूप कुंती के मानस-गगन के छोर पर खिंच गया।"[7] उसी तरह नगर के हाट के दिन अपने गाँववालों के साथ जंगल की छाल, घड़िया बेचने आनेवाली 'सारिका' नामक शबर कन्या के मन

पर 'नगर की ऊँची अट्टारीकावासी सूर्य' शिल्पी विशु छा गया। विशु वह प्रेयसी माँ बननेवाली है सुनकर कुल और कुटुंब के भय से कायरतापूर्वक उसको छोड़कर भाग आया। वह कहता है- "जब मुझे ज्ञान हुआ कि वह माँ बननेवाली है तो कुल और कुटुंब के भय ने मुझे ग्रस लिया। नदी पर बढ़ती हुई साँझ की तरह उस भय की तंद्रा मेरी बुद्धि पर छा गई और मैं भाग आया, सारिका और उसकी अजात संतान से दूर-बहुत दूर भुवनेश्वर में देव मंदिर की छाया में कला के आंचल में अपना मुँह छिपाने।"[8] विशु के प्रेम जीवन की विफलता और उसकी कला का संबंध जोड़ते हुए सौम्यश्री भले ही यह कहे- "वियोग के बादलों पर सूर्य की किरणें बिखरी और कला का सतरंगी इंद्रधनु सारे उत्कल पर छा गया। कैसी विड़ंबना है विशु कि तुम्हारी टूटी हुई रागिनी का विषाद ही तुम्हारी चमत्कारपूर्ण कला का वैभव बना।"[9] सच तो यह है कि विशु के कला का आधार 'यथार्थ से पलायन है'। यह कला भले ही अत्युच्च कला वैभवों से गौरान्वित होती हो लेकिन निरर्थक है। यह बात का अहसास विशु को भी है इसलिए वह कहता है- "भव्य मंदिरों को बनानेवाले मेरे ये हाथ सारिका और उसकी संतान के लिए एक झोपड़ी भी न बना सके।"[10]

विशु के विचार में राजनीति से कलाकार का कोई संबंध नहीं। धर्मपद उसे सचेत करने का प्रयास करते हुए शोषण और अत्याचार की ओर संकेत करता है- "मैं तो एक ऐसा संसार की ओर आपका ध्यान खींचना चाहता हूँ जो कि आपके निकट होते हुए भी आपकी आँखों से ओझल हो गया है। इस मंदिर में बरसों से 1200 से ज्यादा शिल्पी काम कर रहे हैं। इनमें से कितनों की पीड़ा से आप परिचित हैं ? जानते हैं आप की महामात्य की भृत्थों ने इन में से बहुतों की जमीन छीन ली है, कइयों की स्त्रियों को दासियों की तरह काम करना पड़ा है और उधर सारे उत्कल में अकाल पड़ रहा है।"[11] विशु इन सभी बातों से परिचित है। लेकिन वह कला और राजनीति परस्पर संबंधित नहीं है बोलकर यथार्थ से आँख मुँद लेती है। वह यह कहकर अपनी कायरता छिपाता है कि "शिल्पी को विद्रोह की वाणी नहीं चाहिए।"[12] कलाकार सचेत होता है, वह आम आदमी में चेतना का संचार कर सकता है। लेकिन विशु और उसका कोणार्क यथार्थ से मुँह मोड़कर कला के कल्पना लोक में चेतना का हनन ही कर रहा है।

1.1.4 कर्तव्यपरायण विशु -

विशु दंभ एवं प्रदर्शन से सर्वदा दूर है। अपने कर्तव्य के प्रति जागरूक है। कलाकार के कर्तव्य के सम्मुख सारी सांसारिक सुविधाएँ तुच्छ मानता है। उसकी कर्तव्यपरायणता का इससे बड़ा प्रमाण नहीं। वह प्रधान शिल्पी होकर भी सभी सुखों और विलासों से दूर मंदिर के प्रांगण में ही एक कुटिया में निरंतर कार्यरत रहता है।

विशु एक कलाकार है और कला को ही अपने जीवन का सर्वस्व स्वीकारता है जिसे अपने व्यक्तित्व का बोध प्रणय कला एवं प्रतिशोध के समय बार-बार हुआ है। वह अपनी कला साधना में पूर्ण होकर भी कला में पूर्णता को नहीं पाया। अर्थात् मंदिर का निर्माण पूर्ण नहीं कर पाया। इसके पीछे सौंदर्य का संयम और अपने मन में जन्मे अपराध बोध के साथ गहरा अंतर्द्वंद्व भी रहा। नायक विशु अपने भीतर के द्वंद्व को व्यक्त करते हुए कहता है कि "मंदिर के निर्माण करते-करते कभी-कभी सहसा मेरी आँखों के आगे अंधेरा छा जाता था। उस अंधेरे में न तो मैं मूर्तियाँ गढ़ सकता था और न आकार प्रकार निश्चित कर पाता था, न पत्थरों को जीवित कर सकता था।"[13] उसी वक्त धर्मपद नामक युवक शिल्पी विशु का अम्ल पर कलश स्थापित करने में असमर्थ होते देख कर उसका द्वंद्व दूर करता है। धर्मपद विशु को पुरुषार्थ की प्रेरणा देकर कर्म के लिए, संघर्ष के लिए प्रेरित करता। वह विशु को चुनौती देता हुआ कहता है- "आचार्य आपकी कला पुरुषार्थ को भूल गई है।"[14] नियती विशु को यह संकेत देती है युद्ध में घायल धर्मपद उसका पुत्र है और वह मरणासन्न है। ऐसी स्थिति में विशु के मन में ममता का बोध फूट पड़ता है और कहता है- "मुझे क्षमा कर सकोगे पुत्र ?"[15] धर्मपद की मृत्यु सुनकर तो वह मंदिर को तोड़ डालता है। इस टूटन में विशु का आक्रोश भाव भी दिखाई देता है। विशु अपने जीवन काल में एकांत कला को ही महत्त्व देता था। नाटक के अंत में उसके जीवन में प्रतिशोध के सामने नाश और निर्माण एकाकर हो जाते हैं।

1.2 धर्मपद -

1.2.1 सच्चा कलाकार -

धर्मपद कोणार्क नाटक का ऐसा पात्र है जो सहनायक के रूप में उपस्थित होते हैं। अपनी चारित्रिक प्रभावाविष्णुता, उद्दाम आवेग एवं विलक्षण कला धर्मिता के कारण वह प्रायः

समस्त नाटकीय पात्रों पर प्रभाव डालते हैं। वह एक सोलह वर्ष का कलाकार है। जिन्होंने कला का मर्म उत्तराधिकार में पाया है। वह महाशिल्पी विशु का अवैध संतान है। सोलह वर्ष तक विशु को मालूम नहीं था कि वह उसका पुत्र है।

धर्मपद की कला दृष्टि प्रगतिशील है, प्रगतिवादी नहीं। वह व्यक्ति-सापेक्ष सामाजिक परिवेश में मानवीय अनुभूतियों का सच्चाई और ईमानदारी से आकलन करता है। वह न तो कला को एक साधन मात्र मानता है और न उसकी शुष्क उपयोगिता को। वह उपयोगिता और सुंदरता व्यक्ति और समाज के समन्वित पर बल देता है। वह कोणार्क की सुंदर मूर्तियों को निस्सार नहीं मानता लेकिन वह शोषण और दमन का तथा कलाकार कायरता की निशानी बने यह उसे मंजूर नहीं।

प्रथम अंक में विशु मंदिर का कलश स्थापन में असमर्थ दिखाई देता है। लेकिन धर्मपद कलश स्थापना करने में सफल होता है। उसकी सफलता उसकी नई कला दृष्टि की परिचायक है। वह कला को जीवन के साथ जोड़कर देखता है और जीवन को अपनी संपूर्णता के साथ अपनाता है। समाज और कला की परस्परता पर वह अटल विश्वास करता है। वह कहता है- ''मगर यह तो उचित नहीं कि जब चारों ओर अत्याचार और अकाल की लपटें बढ़ रही हैं, शिल्पी एक शीतल और सुरक्षित कोने में यौवन और विलास की मूर्तियाँ ही बनाता रहे।''[16] वह सभी शिल्पी और जनता की पीड़ा को अनुभूत करता है। इसलिए पहले वह महामात्य के द्वारा जनता पर होनेवाले अत्याचारों से महाशिल्पी विशु को अवगत कराता है। उसमें अपने दायित्व बोध के बारे में बताता है। कलश स्थापना के बदले एक दिन के लिए उसे शिल्पी बनाने की माँग भी वह करता है। वह इसलिए की वह चाहता है कि शोषणपूर्ण अत्याचारी व्यवस्था से वह महाराजा नरसिंहदेव को भी अवगत करें और शिल्पियों तथा पीड़ित जनता को अपने अधिकार प्राप्त हों, वे शोषण मुक्त हों। उनके अनुसार शोषण मुक्त जीवन ही कला का मूल प्रयोजन है। इसीलिए शोषण में अनजाने रूप में भी सहायक कला की वह प्रताड़ना करता है।

1.2.2 विद्रोही धर्मपद -

माथुर के नाटकीय पात्र युगभावना के विराट प्रतिनिधि है। धर्मपद बार-बार जनशक्ति का जो उद्घोष करता है, वह युग-दृष्टि का परिचायक है। धर्मपद विद्रोही है। वह

पलायन की अपेक्षा कला में अंतर्ग्रस्त होता है। महामात्य द्वारा शिल्पियों पर किए गए अत्याचार, भृत्थों की भूमि के अपहरण, अकाल आदि यथार्थ स्थितियों के प्रति जागरूकता ही प्रकट नहीं करता, अत्याचारी के विरूद्ध संघर्षरत भी होता है।

धर्मपद शोषण तथा अत्याचार के विरूद्ध विद्रोह के स्वर को उठाता है। धर्मपद की वैचारिकता में आधुनिक प्रगतिशीलता का चिंतन है। वह सर्वहारा वर्ग की भावनाओं का प्रतिनिधित्व करता है। धर्मपद शोषण के विरूद्ध जनवादी चेतना का प्रतीक है। शिल्पियों पर किए जा रहे महामात्य राजराज चालुक्य के आर्थिक शोषण का वह प्रबल विरोध करता है- ''बहुत हुआ, बहुत हुआ दूत ! क्या हम लोग भेड़-बकरियाँ हैं, जो चाहे जिसके हवाले कर दी जाएँ ? आज ही तो हमारे भाग्य का फैसला है। जिस सिंहासन को तुम आज डाँवाडोल कर रहे हो, वह हमारे ही कंधों पर टिका है, क्या उस पर वह बैठेगा, जिसके कारण सैंकड़ों घर उजड़ चुके हैं। वह जिसने कोणार्क के सौंदर्य निर्माता शिल्पियों को ठोकरों से तुच्छ मान ठुकराया ? कलिंग हमारा है और उसके अधिपति है हमारे प्रजावत्सल नरेश श्री रनसिंहदेव।''[17] धर्मपद सामंतीय शोषण में शोषित जनता की स्थिति को बार-बार उद्घाटित करता है- ''मैं तर्क करने नहीं आया हूँ। मैं तो एक ऐसे संसार की ओर आपका ध्यान खींचना चाहता हूँ जो कि आपके निकट होते हुए भी आपकी आँखों से ओझल हो गया है। इस मंदिर में बरसों से 1200 से ऊपर शिल्पी काम कर रहे हैं। इनमें से कितनों की पीड़ा से आप परिचित हैं ? जानते हैं आप कि महामात्य के भृत्थों ने उनमें से बहुतों की जमीन छीन ली है। कइयों की स्त्रियों को दासियों की तरह काम करना पड़ा और उधर सारे उत्कल में अकाल पड़ रहा है।''[18]

धर्मपद किसी के अत्याचार की सह नहीं पाता। वह हिम्मत के साथ महाराज के समक्ष महामात्य के अत्याचारों को सुनाता है। शिल्पियों के हाथ काटने की धमकी, शिल्पियों कारीगरों को दिए जानेवाले मुद्राओं के पुरस्कारों को बंद करना तथा शिल्पियों को दी गई जमीन छीन कर शिल्पियों को निराश्रित बनाना आदि सब कुछ।

धर्मपद कला को जीवन के साथ जोड़कर देखता है और जीवन को अपनी संपूर्णता के साथ अपनाता है। समाज और कला की परस्परता पर वह अटल विश्वास करता है। इसलिए

पहले वह महाशिल्पी विशु को महामात्य के द्वारा जनता पर होनेवाले अत्याचारों से अवगत कराकर उसमें दायित्व-बोध भरने की कोशिश करता है। कलश स्थापना के बदले एक दिन के लिए उसे प्रधान शिल्पी बनाने की माँग भी वह करता है, क्योंकि वह चाहता है शोषणपूर्ण अत्याचारी व्यवस्था से वह महाराज नरसिंहदेव को अवगत करें। इसके साथ शिल्पियों तथा पीड़ित जनता को अपने अधिकार प्राप्त हों, वे शोषणमुक्त हों। उनके अनुसार 'शोषणमुक्त जीवन ही' कला का मूल प्रयोजन है। इसीलिए शोषण में अनजाने रूप में भी वह प्रताड़ना करता है। महाराज नरसिंहदेव के सामने राजराज चालुक्य के अत्याचारों को प्रस्तुत कर 'हर्ष और उल्लास के प्रतीक कोणार्क' के संदर्भ में कहता है- "क्षमा करें देव ? न जाने कितनी आहें हमारे इस सौंदर्य-सदन के चरणों और चोटी से टकराकर बिखर रही हैं।"[19]

धर्मपद शोषण और अत्याचार के विरूद्ध विद्रोह के स्वर को उठाता है। धर्मपद की वैचारिकता में आधुनिक प्रगतिशीलता का चिंतन है। वह सर्वहारा वर्ग की भावनाओं का प्रतिनिधित्व करता है। द्वितीय तथा तृतीय अंक में राजराज चालुक्य जब षड्यंत्र कर कोणार्क पर हमला करता है और राज सत्ता पर अपना अधिकार करने की कोशिश करता है, तभी शिल्पी तथा मजदूर 'धर्मपद' के नेतृत्व में महाराज नरसिंहदेव की रक्षा करते हैं। यहाँ महाराजा नरसिंहदेव की रक्षा प्रतीकात्मक धरातल पर जनसामान्य के अस्तित्व तथा स्वतंत्रता की रक्षा है।

श्रृंगार मूर्तियों को देखकर धर्मपद विशु से कहता है- "जीवन के आदि और उत्कर्ष के बीच एक और सीढ़ी है जीवन का पुरुषार्थ।"[20] इस प्रकार उसके चरित्र में प्रारंभ से अंत तक विद्रोह मुखर होता दिखाई देता है। उसने अपनी कलागत विद्रोहता अश्लील और कामजनक मूर्तियों तथा शिल्पियों के प्रति व्यक्त की है। एक सच्चा कलाकार है धर्मपद। वह मानवतावादी दृष्टिकोण से परिपूर्ण है। चालुक्य द्वारा निर्धन लोगों पर हो रहे अत्याचारों से वह क्षुब्ध हो उठता है। वह विशु को आश्वस्त करता है कि वह कलश को स्थापित कर देगा। लेकिन एक दिन के लिए महाशिल्पी के अधिकारों की माँग करता है।

द्वितीय अंक में धर्मपद का चरित्र प्रभावोत्पादक पड़ता है। नरसिंहदेव विशु के कोणार्क मंदिर को देखकर विशु को रत्नमाला भेंट देने को तैयार हो उठते हैं। उसी वक्त धर्मपद का प्रवेश होता है। धर्मपद कहता है- "देव झुरमुट की ओंट में चहकनेवाले पक्षी का स्वर सर्वदा

हर्षगान ही नहीं होता। आपको क्या मालूम कि उस जयजयकार के पीछे हाहाकार चुपचाप सिसक रहा था ?''[21] शोषण और अत्याचारों को सहकर भी राजा की जयजयकार करनेवाले असंख्य मजदूरों की अव्यक्त पीड़ा को वह इस तरह स्पष्ट करता है। इस तरह चालुक्य के अन्याय का विरोध वह खुलकर करता है। उसके साथ-साथ अपनी गलतियों के संबंध में क्षमा याचना भी करता है।

1.2.3 स्वाभिमानी वीर युवक -

धर्मपद एक सच्चे कलाकार के साथ-साथ स्वाभिमानी वीर युवक भी है। महामात्य चालुक्य को उस पद से हटाने की माँग वह महाराज के सामने करता है। जब चालुक्य विश्वासघात करके महाराज को पदच्युत करना चाहता है तब धर्मपद युद्ध की चुनौती भी स्वीकार करता है। शैवालिक जब उत्तर की माँग करता है तब धर्मपद महाराज से आज्ञा लेकर उसे कहता है- ''तो सुनो शैवालिक ! अपने नए स्वामी के पास यह अंगारों भरा संदेश ले जाओ कि कलिंग-नरेश श्री नरसिंहदेव महाराज, अत्याचारी, विश्वासघातियों की धमकियों की चिंता नहीं करते। वे आज अकेले नहीं हैं, आज उनके पीछे वह शक्ति है, जिससे धरती थर्रा उठेगी, दीन निर्धन प्रजा की शक्ति, जो कोणार्क के शिल्पियों और मजदूरों में दुर्दुम सेनाओं का बल भर देगी। कोणार्क का मंदिर आज दुर्ग का काम देगा। जाओ हमें चुनौती स्वीकार है।''[22]

धर्मपद केवल प्रतिभाशाली कलाकार नहीं बल्कि अदम्य, कुशल संगठन कर्ता एवं स्वाभिमानी वीर युवक भी है। उसमें कौशल एवं संगठन दक्षता है इसलिए वह मंदिर को दुर्ग में परिवर्तित किया है। वह स्वयं दुर्गपति के रूप में पाँच हजार शिल्पियों और मजदूरों की कमान संभाल कर युद्ध का संचालन करता है। उससे उसके सशक्त व्यक्तित्व एवं उपर्युक्त गुणों की सजीव झलक मिल जाती है। धर्मपद विशु की एकांत, कला साधना और व्यक्तिवादी सौंदर्यचेतना का विरोध करते हुए कहता है- ''मगर यह भी तो उचित नहीं कि जब चारों ओर अत्याचार और अकाल की लपटें बढ़ रही हों, शिल्पी एक शीतल और सुरक्षित कोने में यौवन और विलास की मूर्तियाँ ही बनाता रहे।''[23] कलाकार धर्मपद के चरित्र में निर्भीक सामाजिकता और लोकमंगल की भावना है।

धर्मपद महाराज को समझाते हैं कि महामात्य के अत्याचार के शिकार केवल शिल्पी ही नहीं बल्कि संपूर्ण जनता भी है। वह कहता है- "ग्रामों में रहनेवाले सैंकड़ों-हजारों, किसान, वन और अटीविका के शवर और वे अगणित मजदूर, जिनके ढोए हुए पाषाणों को हम शिल्पी रूप देते हैं; देव वे सभी आज त्राहि त्राहि कर रहे हैं। यदि वे बोल पाते तो.... महाराज से केवल एक वरदान माँगते-महामात्य का पद किसी प्रजावत्सल महानुभाव को दिया जाए।"[24]

धर्मपद का कलाकार एक सचेत कलाकार है। स्थितियों से वह पलायन नहीं करता उसका मुकाबला करना उसके कलाकार की अपनी पहचान है। इसलिए 'हाथ काटने' की धमकी से वह विचलित नहीं हुए बल्कि उसका सामना करने को तैयार होता है। क्योंकि संघर्षशील कलाचेतना विपत्तियों का स्वागत ही करती है। वह कहता है- "निर्दय अत्याचार की छाया में ही जो विकसित और मुरझाते हैं, उनको एकाध विपत्त की घड़ी के लिए तैयार होने की जरूरत नहीं।"[25] विपत्त में भी संयत रहकर वह मंदिर का कलश स्थापित करता है। उसकी कला दृष्टि शास्त्रों का अनुकरण करनेवाली नहीं बल्कि जीवन संघर्ष में प्राप्त अनुभूतियों से परिष्कृत है। कला उसके लिए जीवन भी है और जीवन के लिए भी पिता विहीन धर्मपद को बचपन से ही जीवन के लिए संघर्ष का मंत्र उसकी माँ से प्राप्त है। संघर्ष की हर घड़ी में माँ द्वारा दिया हुआ वचन उसका मार्ग प्रशस्त करती है।

धर्मपद अपने शिल्पियों मजदूरों की असीम शक्ति को पहचानता है। व्यक्तिवादी सौंदर्यचेतना ने इन लोगों के भीतर की शक्ति को सुलाया था, धर्मपद उसी शक्ति को जगाने में अपने कलाकार की सार्थकता समझता है। विशु की कला जीवन के जिस पुरुषार्थ को भूल गई थी, धर्मपद की कला उसी पुरुषार्थ को जीवन का प्रतिबिंब मानती है। सामाजिक दायित्व बोध के प्रति प्रतिबद्ध शिल्पी और मजदूर मात्र सौंदर्य के उपासक नहीं सत्य और शिव के उपासक भी हैं। इन्हीं के बल पर धर्मपद अत्याचारी महामात्य को चुनौती देता है। अपने शिल्पियों, मजदूरों तथा धनुष्य-पत्थरों के बल धर्मपद कोणार्क और नरसिंह देव की रक्षा करने का संकल्प करता है। उसका यह संकल्प कला और कलाकार की स्वतंत्रता की रक्षा का संकल्प है। साथ ही कला और कलाकार के दायित्व-बोध का परिचायक भी है।

तृतीय अंक में रात में युद्ध निषिद्ध होने के बावजूद महामात्य कोणार्क की दीवार ढहा कर आक्रमण करता है, तब धर्मपद अपनी बली देकर भी अपने दायित्व की रक्षा करता है। वह भी उस समय जब उसे यह पता चल जाता है कि महाशिल्पी विशु उसके पिता हैं। बचपन से पिता से बिछुड़ कर अनेक कठिनाइयों को पार कर महान शिल्पी बना और अब तो उसके पिता भी मिले। एक ओर वात्सल्य ममता और दूसरी ओर दायित्व बोध व्यक्तित्व भावों की अपेक्षा वह अपने दायित्व को महत्त्व देता है। ममतावश उसे रोकनेवाले पिता विशु से संबोधित करते हुए धर्म पर कहता है- ''तात ! मैं जानता हूँ आप कायर नहीं हैं, पर मेरा मोह आपको दुर्बल बना रहा है। ताता, जाते जाते आपको याद दिलाऊँ कि आप पिता होने के पूर्व शिल्पी हैं, कारीगर हैं.... आज शिल्पी पर अत्याचार का प्रहार हो रहा है। कला पर मदांधता टूट पड़ी है। सौंदर्य को सत्ता पैरों के तले रौंद रही है और कोणार्क आपका सुनहरा सपना, जिस घोंसले में आपके अरमानों का पंछी बसेरा लेने जा रहा था वही कोणार्क एक पामर, अत्याचारी के हाथ का खिलौना बन जाएगा। आतंक के हाथों में जकड़ी हुई कला सिसकेगी। वही कारीगर की सबसे बड़ी हार होगी, सबसे भारी हार।''[26] धर्मपद की यह प्रगतिशील चेतना अंत में विशु पर भी प्रभाव करती है। एकांत कला सौंदर्य में रममान विशु के मन में भी पौरुष जाग उठता है, जो अब तक सोया हुआ था, अंतिम अंक में चुंबक-पत्थर हटा कर मंदिर के कलश को गिराना तथा राजराज चालुक्य का उससे विनाश एक दृष्टि से विशु में जागी प्रगतिशील चेतना तथा कला और समाज की परस्परता बोध से व्युत्पन्न पौरुष की अभिव्यक्ति है।

1.3 पृथु -

पृथु माथुरजी के कलापूर्ण नाटक पहला राजा का नायक एवं प्रधान पात्र है। पृथु को केंद्र स्थान में रखकर नाटक का नाम लेखक ने किया है। पृथु का चरित्र एक पौराणिक चरित्र है, उसे चित्रित करने के लिए नाटककार ने अपनी मौलिकता प्रदर्शित की है। पृथु नाम भी एक प्रतीक है। स्वयं माथुरजी का इस संदर्भ में कथन महत्त्वपूर्ण एवं द्रष्टव्य है- ''पृथु की कथा महाभारत के राजधर्मानुशासन पर्व में संक्षिप्त रूप में दी गई है और भागवत पुराण (चतुर्थ स्कंध, उन्नीसवाँ अध्याय) तथा विष्णु पुराण में उसके अनेक प्रसंग जोड़कर उसे विस्तृत किया गया है। किंतु पृथु का

उल्लेख ऋग्वेद और अथर्ववेद दोनों में मिलता है। शतपद ब्राह्मण में उसे पहला राजा की संज्ञा दी गई है। इन्हीं उल्लेखों को महाभारत और पुराणों में सिलसिलेवार आख्यान का रूप दिया है।"[27] पृथु की पुराणों में एक विशाल रूप में प्रतिष्ठा हुई है। वह है दृढ़ संकल्प, सत्य प्रतीक, महान विजेता, ब्राह्मण भक्त, शरणागत वत्सल और दंड़पाणी अवतारी पुरुष के। देवताओं की आज्ञानुसार पृथु ने राज्य का शासन ग्रहण किया। नाटक में पृथु का प्रवेश प्रथम अंक में होता है। गुरु अंग के कहने पर वह हिमालय से ब्रह्मावर्त आ चुका है। उस पर दस्युओं के निष्कासन का काम सौंपा गया है। ब्रह्मावर्त की परिस्थितियों को देखकर उन्हें वही ठहरने का निश्चय लेना पड़ता है। मुनियों के आग्रह पर पृथु को ब्रह्मावर्त का राजा बनना पड़ता है।

1.3.1 एकता चाहनेवाला शासक -

मुनियों के आग्रह पर पृथु ब्रह्मावर्त का राजा बन जाता है। वेन के भुजा मंथन के समय उन्हें मुखौटा पहनाकर वेन का भुजापुत्र घोषित करता है। मुनिगण उसे शपथ दिलवाकर पाँच वचन लिए जाते हैं। दो वचन लेते ही वह हिचकिचाता है। 1. वेदपाठी ब्राह्मण अदंड़नीय होंगे। 2. समाज को वर्णसंकरता से बचाएँगे, आर्य अनार्थ जाति के रक्त में मिलावट नहीं होने देंगे। यही दो वचनों से वह रूकता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि पृथु पक्षपाती नहीं है, वह समभाव और एकता चाहता है।

1.3.2 कर्तव्यपरायण पृथु -

नाटक की महत्त्वपूर्ण घटना दस्युओं का नामोनिशान करना है। सूत और मागध राजा की असमय स्तुति करते हैं, जो उसे पसंद नहीं आती। इससे पृथु का चरित्र निखरता है। उसे बिना कारण से स्तुति करना पसंद नहीं है। वह कहता है- "बंद कीजिए यह शब्दाड़ंबर अभी तो मैने राजा होकर रत्तीभर भी काम नहीं किया अभी से स्तुति कैसी ?"[28] इससे राजा के कर्तव्यबोध स्पष्ट होते हैं।

पृथु प्रजावत्सल राजा है। देश में अकाल और सुखा पड़ता है, भूख और मृत्यु का तांड़व होता है। जनता की शिकायत है कि "महाराज पृथु ने जो कुछ किया है मुनियों के आश्रमों और उनके यज्ञों के लिए।"[29] निड़र पृथु निहत्था उत्तेजित भीड़ में घुस जाता है। वह जनता के उन्माद का दमन नहीं करता, उसका आलिंगन करता है। अकाल और भूख के विरूद्ध वह लड़ाई

करता है। उसकी सारी उदासी गायब हो जाती है। उसे एक अद्भुत आह्लाद का अनुभव होता है। जनता की पीड़ा उसका क्रोध बनकर मुनियों से पूछती है कि जब उन्हें दिए गए सभी वचन उसने विधिवत् पूरे किए हैं, तब उसके राज्य में अकाल और सूख क्यों ? परंतु स्वार्थी और कुचक्री मुनिगण राजा के प्रचंड़ क्रोध की धारा भूचंड़िका के पूजन की ओर मोड़ देते हैं और पृथु को सरस्वती पार के रेगिस्तान में अनार्य खंड़हरों की ओर भेजकर उसे जनता के असीम स्नेह और लोकप्रियता से काटकर अलग कर देते हैं। उर्वी द्वारा समझाया जाने पर पृथु वहाँ जाकर देखता है कि अनार्य और दस्यु कहे जानेवाले वे धरती के बेटे किस तरह धरती का दोहन करते हैं। पृथु प्रतिज्ञा करता है- "ओ विश्वरूपा वसुंधरे ! अपने बाहुबल से मैं तुझे समतल करूँगा, अपने पुरुषार्थ से सब को जुटाकर तेरी अनंत संपदा को मानव मात्र के लिए प्रस्तुत करूँगा।"[30] राजा सूखे और अकाल का चक्रव्यूह तोड़कर धरती की अनंत संपदा के दोहन का कार्य आरंभ करता है और धरती को नया नाम देता है- पृथ्वी। वह पृथ्वी को निन्यानबे प्रकार से दुहता है। दृषद्वती की धारा को मोड़नेवाले बांध की पूर्ति के साथ उसका सौंवा यज्ञ संपूर्ण हो जाएगा। वह बिना युद्धों के चक्रवर्ती बनेगा। परंतु अंश-स्वार्थी और धनलोलुप मुनि उस विशाल बांध को पूरा नहीं होने देने चाहते हैं। वह नए मजदूरों की आवश्यकता देखकर भी उन्हें वहाँ नहीं भेजते। परंतु तभी समाचार मिलता है बाँध नहीं रहा और उसके साथ ही कवष और उर्वी भी बहते हुए जल में सदैव के लिए विलीन हो गए। पृथु जड़ीभूत-सा हो जाता है और कुदाली उसके हाथ से छिटक जाती है।

नाटक के अंत में पृथु का स्वागत उसके हृदय की व्यथा और द्वंद्व को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करता है- "....लोग कहेंगे पृथु अवतार था। अवतार। ....लेकिन इस मुखौटे के नीचे मेहनत के पसीने से चमकता चेहरा कौन जानेगा ? इन हाथों में कुदाली की पकड़ को कौन समझेगा ? किसे ध्यान होगा कि धरती को समतल बनाकर उसे दोहनेवाले हाथ कौन से थे ? पृथ्वी। ....पृथु की पृथ्वी। ....कौन समझेगा इन शब्दों को ?"[31] वह हृदय विदारक और मार्मिक शब्दों में उर्वी को 'सहचरी', 'प्राण' और माँ के रूप में स्मरण करता है।

पृथु अत्यंत शक्तिशाली, जीवंत, प्रखर और विभिन्न पास्वर रंगों के योग से बना चरित्र है। वह पौराणिक आवरण में आधुनिक मनुष्य की व्यथा और संघर्ष को प्रस्तुत करनेवाला है। जीवन की व्यर्थता की अनुभूति से पीड़ित फिर भी निरंतर जीवन को अर्थ देने के प्रयास में रत

मानव का चित्र प्रस्तुत करता है। पृथु के चरित्र का विकास भी एक बंधे-बंधाए रूप में किया गया है। प्रथम अंक में पराक्रमी, वीरश्रेष्ठ योद्धा और मुनियों-ऋषियों के रक्षक का रूप, द्वितीय अंक में प्रजा नायक का रूप और तृतीय अंक में कर्मपुरुष का रूप है।

1.3.3 दृढ़ एवं साहसी व्यक्तित्व -

पृथु का व्यक्तित्व दृढ़ एवं साहसी है। उसके साहस का परिचय हमें प्रारंभ में ही मिलता है। पृथु कवष के साथ ब्रह्मावर्त में प्रवेश करता है। उसका पहला काम है गुरु भाई कवष को राजमाता सुनीथा को लौटाना। किंतु ब्रह्मावर्त में आते ही मुनिगण एक प्रस्ताव रखता है कि ब्रह्मावर्त को दस्युओं के आक्रमण से बचाना। दस्युओं से यज्ञ और आश्रम को बचाना है। गर्ग ऋषि को पृथु कहते हैं- ''संरक्षण वह तो मामूली सी सेवा थी और हमारा कर्तव्य था- मगर डाकुओं के दूसरे गिरोहों से सावधान रहना होगा आप लोगों को.... लौटते वक्त मैं आश्रमों के आसपास के क्षेत्र में एक चक्कर लगाऊँगा।''[32] दस्युओं को पराजित करते वक्त उसका साहस ही प्रकट होता है। शुक्राचार्य उसके साहस एवं दृढ़ व्यक्तित्व की प्रशंसा करता है।

जब जनता अकाल और भूख से पीड़ित होती है तभी भी पृथु का साहस हमें दिखाई पड़ता है। भूख से पीड़ित लोग सूत और मागध पर प्रहार करने लगे। इसकी सूचना मिलते ही पृथु क्रुद्ध भीड़ के बीच में निहत्था निर्भीकता पूर्वक चला जाता है। दासी के इन शब्दों में राजा पृथु की इस अपूर्व साहसिकता का उल्लेख हमें मिलता है- ''उन्होने आजगव धनुष्य उठाकर रख दिया। खड्ग को छुआ तक नहीं। निहत्थे भीड़ में घुस गए और उस तरफ बढ़ने लगे जहाँ सूत और मागध पर भीड़ बेतहाशा प्रहार कर रही थी।''[33] इससे सचमुच पता चलता है कि पृथु साहसी शासक थे।

पृथु दृढ़ प्रतिज्ञावान शासक भी थे। वह अपने दिए हुए वचनों और कहे हुए शब्दों पर बेहद टिकता है। अपने व्यक्तिगत संबंधों और कार्यों से अपना वचन वह ऊपर मानता है। जब मुनिगण पृथु को राजा घोषित किया तब यह वचन कराया जाता है कि मैं आर्य जाति की रक्त की मिलावट नहीं करूँगा तथा रोकूँगा। अर्थात् वर्ण संकरता को रोकना पृथु का कार्य था। राजा बनने के बाद अपनी प्रतिज्ञा का पालन करने के लिए वह अपनी प्रेमिका उर्वी का संबंध तोड़ देता है। कवष उर्वी के संबंध के बारे में बोलते समय पृथु यह कह देता है कि ''मैने वचन दिया है कि रक्त की

मिलावट नहीं होने दूँगा.... उर्वी दस्यु कन्या है, है न ?''[34] इस बात पर नाराज होकर कवष पृथु से सदा के लिए अलग हो जाता है तो पृथु अपने दृढ़ व्यक्तित्व का परिचय इन शब्दों में देता है- ''और तुम जंघापुत्र तुम ? कवष - मैं समझ रहा हूँ तुम लोगों की चाल। जाओ जाओ लेकिन सावधान।''[35]

नाटक का पृथु हिमालय में व्यास और सतलज घाटियों के बीच त्रिगर्त और कुलूत के देवप्रस्थ के आर्यकुल का वंशज और अंग का शिष्य है। कवष और उर्वी उसका बालसखा है। वह अपने गुरु की धाती-कवष राजमाता सुनीता को सौंपने स्थानेश्वर आता है। परंतु मुनि गण कवष को वेन का जंघापुत्र और पृथु को भुजापुत्र कहकर पृथु को अपना राजा घोषित कर देते हैं। हिमालय ने पृथु को स्वप्न नहीं शक्ति दी है। वह प्रत्येक चुनौती का सामना करने को तैयार है। परंतु उसका द्वंद्व है- ''वायदे और चुनौती के बीच किसे धरूँ।''[36] चुनाव और वरण के बीच पृथु का द्वंद्व उसे आधुनिक मनुष्य के निकट ले जाता है। उर्वी पृथु के ह्रदय में गहरे पैठी है। वह उसकी सहचरी और बालसखी है। हिमालय के प्राकृतिक परिवेश और उर्वी से टूटकर उसका मन भटकने लगता है। मानो जिस वृक्ष के बसेरे में से पक्षी उड़ा था, लौटने पर उसे कटा हुआ पाकर भटकने लगे। तेजस्वी आनन, गौर वर्ण और बलिष्ठ भुजाओंवाला साहसी पृथु ब्रह्मावर्त का पहला राजा बनता है। विधान के बंधन में बंधता है। तीसरे और पाँचवें वचनों (वेदपाठी ब्राह्मण अदंड़णीय होंगे तथा समाज को वर्णसंकरता से बचाना) पर उसका ह्रदय विद्रोह करता है और बिना वचन दोहराए कुशा की रस्सी में गाँठ लगा देता है। सूत मागध को व्यर्थ की स्तुति से रोकता है और अपने मंत्रीमंडल का गठन करता है। वह कवष को सेनापति बनाना चाहता है लेकिन वह अस्वीकार कर देता है। राजा बनने पर उसके सामने नए उत्तरदायित्व आ जाते हैं। तब उसको चिरपरिचित उर्वी भी दस्यु-कन्या-आर्यों के बैरी डाकुओं की कन्या प्रतीत होती है। उर्वी उसकी सहचरी है अतः तब भी उसे लगता है कि, ''मुझे अपने नए उत्तरदायित्व में उसकी जरूरत है।''[37]

1.3.4 आश्रम रक्षक एवं ब्राह्मण पालक -

पृथु भारतीय सभ्यता और संस्कृति में विश्वास करनेवाला है। वह ब्राह्मणों एवं आश्रमों की परंपरागत प्रणाली को बनाए रखना चाहता है। ब्रह्मावर्त में आते ही उसके सम्मुख

बहुत उत्तरदायित्व आ जाते हैं। वह हैं ब्राह्मणों के यज्ञों और मुनियों के आश्रमों की रक्षा करना। शुक्राचार्य पृथु को इस कार्य की ओर याद दिलाता है। जब पृथु राजा बन जाता है तब उन्हें मुनियों के यह शर्तें स्वीकार करना पड़ता है। उसमें एक शर्त यह भी कि वेदपाठी ब्राह्मण आप के लिए अदंड़णीय होंगे। इस शर्त को भी मानकर पृथु कुशा में गाँठ लगा देता है। इसी प्रकार पहला और दूसरा वचन भी आश्रमों और मुनियों के हित के लिए स्वीकार करना पड़ता है। नहर बनाने के लिए मुनियों से मजदूरों को माँग करते समय भी पृथु की ब्राह्मण भक्ति प्रकट होती है।

1.3.5 पहला भूपालक -

पृथु के चरित्र का और एक महत्त्वपूर्ण पहलू यह है कि वह पहला भूपालक राजा है। नाटककार ने इस संदर्भ में लिखा है- "पुराणों में पृथु की एक दृढ़संकल्प, सत्यप्रतीक, महान विजेता, ब्राह्मण भक्त, शरणागत वत्सल और दंड़पाणि अवतारी पुरुष के रूप में प्रतिष्ठित हुई है। लेकिन इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण और प्रामाणिक है उत्पादन बढ़ानेवाला, उसे समतल कर उसकी आर्द्रता का संवर्धन करनेवाला, कृषि और सिंचाई और भूविभाजन का प्रमुख नेता पृथु।"[38] पृथु ने जनता के सुख और शांति के लिए भूमि को समतल बनाया। जन अकाल और भूख से पीड़ित होकर हाहाकार करने लगे तब वह मुनियों से क्रुद्ध होकर पूछता है- "मेरे राज्य में अकाल क्यों है ? पैदावर क्यों नहीं होती ? वह सारा जल कहाँ चला जा रहा है ? आप के यज्ञों से उत्पन्न अग्नि जिन जंगलों को जला रही है वहाँ की धरती बाद में धान क्यों नहीं देती ? मिट्टी है उसमें रस नहीं। पानी है उसमें नमी नहीं। एक ही सत्य है एक ही पुकार- भूख ! भूख।"[39] मुनि उसे इसका कारण भूचंड़ी है बताता है, तब वह उन्माद में भर उठता है। वह उसका विनाश करने का प्रण करता है। किंतु उर्वी द्वारा उन्हें सही दिशा मिलती है और कर्मयोगी बनने की प्रेरणा भी। वह धरती रूपी गौ को दुहने का काम कवष को सौंपता है। दो वर्षों के पृथु के प्रयास तथा बाहुबल से पृथ्वी उर्वर बनती है। सारी भूमि समतल होकर खेती देने लगती है। गाँव कस्बे बन गए हैं। खेती में खाने उगलने लगी थी। "पृथु ने पृथ्वी की प्रेरणा से धनुष की नोक से पर्वतों को फोड़कर भूमंड़ल को समतल कर दिया ताकि इंद्र का बरसाया हुआ पानी समस्त पृथ्वी को समान रूप से सींच सके।"[40] इस प्रकार पृथु सच्चे अर्थ में पहला भूपालक है। नाटक के अंत में स्वयं पृथु के शब्द उसके चरित्र

पर प्रकाश डालते हैं। यथा : ''मैं आदि राज पृथु, आर्यों का पहला राजा ! मेरा यही स्वरूप तो सदियों बाद याद किया जाएगा, धनुष बाण से सुसज्जित देह, खड़ग की चमक से मंडित मुख, शत्रुओं का विनाशक, प्रजा का नायक, मुनियों का पालक पृथु।''[41] पृथु उर्वी को 'सहचरी', 'प्राण' तथा 'माँ' के नाम से पुकारता है और नाटक का अंत ''भूमि माता है और मैं इस पृथ्वी का पुत्र हूँ।''[42] इस प्रसिद्‌ध वेद वचन से होता है।

1.3.6 गृहस्थी जीवन जीनेवाला पृथु -

गर्ग मुनि की प्रतिपालिता कन्या अर्चना पृथु की पत्नी है। उसके मादक सौंदर्य से वह हर्ष विभोर हो उठता है। उसे प्रेमिका उर्वी की याद तक अच्छी नहीं लगती। उर्वी दस्यु कन्या है। राजा पृथु ने वर्णसंकरता नहीं होने का वचन ले लिया है। उसे पत्नी, धर्म और गृहस्थी जीवन अधिक प्यारा है। पत्नी अर्चना के प्रेम में वह डूब जाता है। पृथु कहता है- ''यह तुम्हारी देह का सागर.... और मैं हूँ कि गहराइयों में खो जाता हूँ .... और सागर की तलहटी मिलती ही नहीं.... ओह तुम्हारी देह का सागर अर्चि।''[43]

पृथु के व्यक्तित्व में कर्म की स्फूर्ति और सेक्स की प्रबल लालसा का सहज अस्तित्व है। युद्‌ध और संघर्ष के लिए उत्तेजित पृथु धनुष की टंकार करता है। तुरंत बाद सुनाई पड़ती है अर्चना की पायल की झंकार। पृथु को लगता है, मैं ही डमरू हूँ और मैं ही बन्सी वह अर्चना से कह उठता है- ''आओ हिल्लोर उठ रही हैं। एक ही उठान में तुम्हारी धरती का आलिंगन.... और गगन की हलचल। ....एक ही उन्माद में धनुष की टकार और प्यार का राग। कोई उलझन नहीं, कोई दुविधा नहीं आओ।''[44]

सूत-मागध राजा की यशोगाथा, उनकी गुणगान और स्तुति करना चाहते हैं। लेकिन पृथु को यह सब व्यर्थ लगता है। उसे प्रतीत होता है कि वह रोगी है। वह अपने मन की व्यथा को, अनुभूति को अर्चना के समक्ष इन शब्दों में व्यक्त करता है- ''किसी ऊँची चट्‌टान की कड़ी चढ़ाई तय कर लेने के बाद देखता हूँ पठार समतल भूमि। ....इसका क्या करूँ अर्चना ? ....मैं तो चढ़ाई का आदी हूँ। ....यह अंतहीन ऊब जिसने मुझे आ घेरा है। ऊबा आते-जाते श्वासों की मरूभूमि। ....कण-कण में व्याप्त, जमी हुई ठिरन.... क्योंकि हवा ठहर गई है.... और

हड्ड़ियों को भेदनेवाले सर्द झकोरे आते ही नहीं।''[45] अर्चना पृथु से इस अवसाद को अपने राशि देह वैभव में डूबा देना चाहती है। परंतु पृथु को लगता है कि यह पलायन है। वह अर्चना को समझाता है- ''अर्चि सुनो। ...एक तराजु है मेरा यह तन-मन। एक पलड़े पर हम तुम्हारे आलिंगन का सोना और दूसरे पर चुनौतियों का भार.... अगर केवल....केवल प्यार के सम्मोहन में खो जाऊँ तो....तो तराजु के पलड़े चंचल हो जाते हैं.... अर्चि।''[46] परंतु पलायन पृथु की नियती है। कभी कर्म द्वारा और कभी भोग द्वारा वह अपने आप से भागता है। वह अपना सामना नहीं कर सकता।

पृथु के अपने आप से पलायन में दो बातें हैं वह यह अपराध गंथि की, ब्रह्मावर्त का शासक बनकर उसने अपने गुरु और कवष दोनों के साथ विश्वासघात किया है। आरंभ में ही वह कवष से कहता है- ''तुम मेरे साथ रहोगे न ? चाहे जो हो ? ....चाहे मैं.... मैं, तुमसे धोखा भी करूँ।''[47] और दूसरी कुंड़ा है- उर्वि को प्राप्त न कर पाने की।

1.4 कवष -

अत्याचारी शासक वेन का एक शूद्र नारी से अनैतिक संबंध था। वह स्त्री कवष को जन्म देकर मर गई। वेन पुत्र कवष का पालन-पोषण अंग के आश्रम में हुआ। युवा होने पर और वेन की मृत्यु हो चुकने पर अंग उसे पृथु के साथ ब्रह्मावर्त भेजा। क्योंकि ब्रह्मावर्त में उसे अपना पैतृक अधिकार मिल जाय और वह वेन के उत्तराधिकारी के रूप में शासन कर सके। किंतु आर्य संस्कृति का रक्षक और याथास्थितिक मुनि समुदाय कवष के स्थान पर पृथु को ही शासक के रूप में स्वीकारता है और कवष ब्रह्मावर्त से बाहर चला जाता है।

मुनियों ने वेन के शव को लेकर पहले उसकी दाहिनी जंघा का मंथन किया। उससे एक नाटे कद का मनुष्य उत्पन्न हुआ जिसकी आकृति बेड़ौल थी, रंग जले हुए खंभों के समान, आँखें लाल, बाल काले लेकिन कुरूप नहीं तेजस्वी मुख मुद्रा। मुनिगण उसे निषाद कहता है। वह जंगलों और पहाड़ियों में विचरनेवाले जातियों के सरदार हैं। 'पहला राजा' नाटक में कवष को पहले पृथु के साथ प्रस्तुत किया गया है। लेकिन पौराणिक आधार बनाए रखने के लिए शुक्राचार्य आदि ऋषियों द्वारा वेन का शव की जंघा का मंथन करके कवष को उत्पन्न कराया गया। अपने

आपको श्रेष्ठ समझनेवाले मुनिगण कवष से घृणा करते हैं। वे उसे अपने समकक्ष समझने के लिए तैयार नहीं होते और उसका तिरस्कार किया जाता है।

1.4.1 अनार्य जाति का प्रतिनिधि -

'पहला राजा' नाटक में आर्य-अनार्य जातियों के सांस्कृतिक समन्वय को उभारा गया है। कवष को माथुरजी ने वेन का जंघापुत्र कहा है। यद्‌यपि कवष नामक निषाद का पृथु से कोई संबंध नहीं किंतु नाटककार ने कथा संयोजन और अपने उद्‌देश्य की पूर्ति के लिए उन्हें रखा। नाटककार ने उसका परिचय पौराणिक रूप में दिया है। निषाद, अनार्य जाति का प्रतिनिधि और वर्ण संकर आदि कहकर उसे अनार्य से संबोधित किया गया है। प्रारंभ में ही उन्हें आर्येतर जातियों का राजा घोषित कर देते हैं।

'निषाद' शब्द का अर्थ है ब्राह्मण या क्षत्रीय पिता और शूद्र माता से उत्पन्न संतान। 'निषाद' शब्द पर्वतों और जंगलों में रहनेवाली जातियों के लिए भी प्रयुक्त होता है। वेन की जाँघ से उत्पन्न निषाद ही उनका पूर्व पुरुष माना गया है। निषाद के जंघापुत्र होने के संबंध में नाटककार की व्याख्या है कि "इस कथा में वस्तुतः वेन की किसी जारज, वर्णसंकर संतान की ओर संकेत है। जाँघ के मंथन से और कोई आशय नहीं हो सकता। वेन का किसी आर्येतर कन्या से संबंध रहा होगा और उसकी संतान आर्य मुनियों को अस्वीकार रही होगी।"[48]

वेन की वर्णसंकर संतान कवष और देवप्रस्थ के आर्यकुल का वंशज पृथु गुरुभाई है। वेन की मृत्यु का समाचार सुनकर अपने गुरु अंग की आज्ञा से पृथु कवष को ब्रह्मावर्त छोड़ने आता है। मार्ग में वे दोनों मिलकर दस्युओं से आश्रम की रक्षा करते हैं। कवष प्रतिभासंपन्न युवक है। उसी की विलक्षण प्रतिभा से पृथु दो घोड़ों से आश्रम में एक सेना का काम लेता है। पृथु के शब्दों में- "कवष की काली चमड़ी के नीचे एक शुभ्र धारा बहती है।"[49]

1.4.2 सच्चा मित्र -

नाटक में कवष को पहले पृथु के साथ प्रस्तुत किया गया है। कवष पृथु का सच्चा मित्र है। अंग ने पृथु के साथ कवष को भी ब्रह्मावर्त भेजा है, वह वेन का एक शूद्र नारी में उत्पन्न हुआ पुत्र है। ब्रह्मावर्त में उसे अपना पैतृक अधिकार नहीं मिला। मुनिगण उसे वेन का जंघापुत्र

घोषित किया गया है। लेकिन पृथु उसे एक सहयोग और मित्र के रूप में स्वीकार करता है। कवष से ही पृथु को व्यक्तित्व मिलता है। अन्यथा कवष की अनुपस्थिति में पृथु का चरित्र व्यर्थ हो जाता है। वह रेगिस्तान में पृथु के साथ मिलकर श्रमिकों का प्रतिनिधित्व करता है। सरस्वती की धारा को मोड़ने के लिए नहर निर्माण के लिए पृथु के साथ मिलकर वह काम करता है। वह पूर्ण रूप से पृथु का सच्चा मित्र है।

1.4.3 कर्म का उपासक -

कवष के चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह कर्म का उपासक है। साथ ही वह युद्धवीर और निर्भीक भी है। वह बातों पर विश्वास नहीं करते सिर्फ कर्म पर विश्वास करते हैं। वह नाटक के प्रारंभ में ही पृथु से कहता है कि "चलो पृथु मैं तुम और उर्वी सरस्वती की धारा को फिर से बहाने की तदबीर खोजे और यों झगड़े की जड़ ही दूर कर दें।"[50] जब पृथु कवष को दस्युओं के विरूद्ध युद्ध करने के लिए प्रेरित करता है तब वह स्पष्ट कहता है- "एक और युद्ध भी लड़ना है। सरस्वती की धारा को घेरनेवाला रेगिस्तान के विरूद्ध।"[51] कर्म के उपासक होने के कारण ही वह पृथु का सेनापति बनना अस्वीकार कर देता है और अपने लक्ष्य की ओर बढ़ जाता है। वह रेगिस्तान में उर्वी के श्रमिकों का प्रतिनिधित्व करता है। वह रेगिस्तान में उर्वी के साथ श्रमिकों का प्रतिनिधित्व करता है।

कवष शासक बनने का इच्छुक नहीं। वह पृथु के साथ त्रिगर्त वापस लौट जाना चाहता है। ब्रह्मावर्त के लोग कवष को जंघापुत्र कहकर तिरस्कृत करते हैं तो उसका मन वितृष्णा, व्यंग्य और घोर कटुता से भर जाता है। फिर भी उसके मन की पावनता ब्रह्मावर्तवासियों को डाकुओं के आक्रमण की सूचना देने पर विवश करती है। पृथु के समक्ष अपनी स्थिति देखकर उसके हृदय में हीनता ग्रंथि उत्पन्न हो जाती है। पृथु द्वारा कवष को अपना सेनापति बनाए जाने पर कह उठता है- "पृथु, तुम्हारे मंत्रिमंडल के मुनियों ने तो मुझे जंघापुत्र घोषित किया है। मुझे तो जंगल की जातियों का सरदार बनना है, तुम्हारा सेपापति नहीं।"[52] उसके मन की यह कुंड़ा अन्य स्थानों पर भी प्रकट होती है, जैसे पृथु के व्यंग्यपूर्ण लय में कहा गया उसका यह कथन.... "उर्वी आर्य-विरोधी दस्यु और मैं आर्यों का दास निषाद।"[53] तथा "नहीं, यह धनुष मेरे लिए नहीं है। मैं

जंघापुत्र हूँ। मानस पुत्र राजन, तुम्हारे साथ कंधा भिड़ाकर मैं युद्ध नहीं कर सकता।''[54] कवष के चरित्र में जो शक्ति और ऊर्जा है उसके मूल में यही हीनता ग्रंथी है। पृथु के साथ कंधा भिड़ाकर वह युद्ध नहीं कर सका। लेकिन वह दूसरे मोर्चे पर लड़ता है- सरस्वती की धारा को घेरनेवाले रेगिस्तान के विरूद्ध। यह ग्रंथिपूर्ण परिपक्व हो जाता है। जब कवष का बालसखा, गुरुभाई पृथु भी उत्तेजित होकर उसे जंघापुत्र कह देता है। और कवष शुक्राचार्य के आश्रम से अपमानित करके निकाल दिया जाता है। जाते वक्त वह घोषणा करता है कि वह मुनि बनकर आश्रम में लौटेगा। उसने अपने बाहुबल से रेगिस्तान के सूखे वक्षस्थल में नहर की रेखा खींच कर सरस्वती के अंतस में पावन जल का आचमन किया परंतु कुचक्री मुनियों ने उसे आश्रम में लौटने के लिए जीवित नहीं छोड़ा। मुनियों ने स्वार्थवश बाँध पर श्रमिक नहीं भेजे। परिणामस्वरूप प्रचंड बाढ़ से अधूरा बाँध टूट गया। नहर सदैव के लिए सूखी रह गई और पुरुषार्थ का प्रतीक कवष अपनी बाल सखी उर्वी को डूबने से बचाने में स्वयं भी डूब गया।

कवष न केवल कर्मयोगी है वरन पृथु को भी कर्म के लिए प्रेरित करता है। पृथु जब दस्युओं के विनाश के लिए चल पड़ता है तब कवष स्पष्ट कहता है वह दस्यु नहीं है और वह लूटपाट नहीं करते। वास्तव में वह भूमिधर किसान है जिन्हें अनार्य कहकर आर्यों ने प्रताड़ित किया है। कवष पूरी जानकारी देते हुए कहता है कि ''एक जमाने में ब्रह्मावर्त के आर्यों और इंद्र ने इनके नहरों को नष्ट किया - सिंधु, इरावती और सरस्वती के तट पर वे जगमगाते नहर वीरान हो गए। उन्हें डर है कि अब ब्रह्मावर्त के मुनि अपने यज्ञों के नाम पर जंगलों को काट रहे हैं। इस तरह उनकी बची हुई खेती ही मटियामेढ़ हो जाएगी।''[55] अंततः कवष कर्मपथ पर चलते हुए अपना बलिदान कर देता है। नहर का बाँध बनाते वक्त बाढ़ पर उर्वी डूब जाती है उसकी रक्षा करते हुए कवष भी डूब जाता है। इस प्रकार कवष महान मानवीय गुणोंवाला और निस्वार्थ चरित्र है।

1.4.4 मजदूर वर्ग का उपासक -

कवष में कर्तव्यपरायणता है। इसमें जनरुचि के अनुसार कार्य करने की क्षमता है। कवष मजदूर वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। अपने परिश्रम द्वारा मरूस्थल में सरस्वती के जल का आह्वान कर जल पैदा करता है। नहर निर्माण कार्य में श्रमिकों के साथ सन्नद्ध हो जाता है। कवष

नाटक में पृथु के व्यक्तित्व के एक खंड़ भी है। क्योंकि पृथु कवष से एक प्रकार की प्रेरणा भी लेता है। कवष के चरित्र की घटनाओं से पता चलता है कि अपने को ही मानने पर उसे दुःख नहीं, उसे अपने पराक्रम पर गर्व है। वह श्रम का महत्त्व जानता है। केवल बात करना वह पसंद नहीं करते। वह कहता है- "मुझ से पूछो तो ब्रह्मावर्त में लोग बातें ज्यादा करते हैं, काम कम....।"[56] सरस्वती की धारा को मोड़ने के लिए नहर निर्माण कार्य में श्रमिकों के साथ सन्नद्ध हो जाता है। कवष के श्रमिक रूप का परिचय इस वार्तालाप से दिखाई पड़ता है -

पृथु :- मैं तुमसे युद्ध करने आया था कवष।

कवष :- युद्ध इस समय तो मेरे रक्त की अपेक्षा तुम्हें शायद वह जल ज्यादा कीमती लगे।

पृथु :- कवष उस दिन तुमने मेरा सेनापति बनने से इनकार करके ठीक नहीं किया लेकिन आज।

कवष :- मेरी सेना तुमने देखी ? सैंकड़ों ने मिलकर उसे यंत्र को चलाया और सरस्वती के सूख वक्षस्थल में नहर की रेखा खिंच गई।

1.5 नरसिंहदेव -

कोणार्क नाटक के एक प्रमुख पात्र हैं नरसिंहदेव। उत्कल राज्य के नरेश हैं राजा नरसिंहदेव। नरसिंहदेव को प्रजावत्सल और कला के आश्रयदाता, लोकप्रिय दयालु राजा के रूप में चित्रित किया है।

1.5.1 कला के आश्रयदाता राजा -

नाटक के द्वितीय अंक में नरसिंहदेव दर्शकों के सामने आते हैं। विशु का बनाया हुआ कोणार्क मंदिर देखकर वह खुश हो जाते हैं। वे कहते हैं- "यहाँ निकट से देखने पर तो प्रतीत होता है, मानो तुमने किसी जौहरी के गढ़े अलंकारों को पाषाण बना दिया हो और दूर से इस विमान और जगमोहन के शिखर हिमाचल की चोटियों की स्पर्धा करते जान पड़ते हैं।"[57] इस प्रकार राजराज नरसिंहदेव कलाप्रिय दिखाई देते हैं जो बंग प्रदेश में अपनी सारी सेना छोड़कर कोणार्क मंदिर को देखने की आकांक्षा में आए हैं। वे विशु पर इतने खुश हो जाते हैं कि उसे रत्नमाला देते हैं। विशु रत्नमाला का स्वीकार नहीं करता और बोलते हैं रत्नमाला का अधिकारी धर्मपद है।

1.5.2 प्रजावत्सल राजा -

नरसिंहदेव प्रजावत्सल राजा है। धर्मपद के द्‌वारा शिल्पियों पर किए जानेवाले अत्याचार, उनकी मुद्राओं का पुरस्कार बंद करना तथ उनकी जमींन छीन लेना आदि बातें महाराज को मालूम होते ही वे इसके अतिरिक्त प्रत्येक शिल्पी को दस-दस मुद्राओं का पुरस्कार मूर्तिप्रतिष्ठापन के उपलक्ष्य में देने का आश्वासन देते हैं। चालुक्य का इन अत्याचारों के बारे में अभी तक उन को कुछ पता ही नहीं था। सब उनके अनुवाद से नहीं चल रहा था। चालुक्य के अत्याचार धर्मपद से सुनकर वह क्रोधित हो जाते हैं और शिल्पियों की जमीन तथा मुद्राओं का पुरस्कार भी तुरंत देने की आज्ञा देते हैं। इससे पता चलता है कि वह प्रजावत्सल नरेश है।

प्रतिहारी द्‌वारा चालुक्य केमहाषड़यंत्र का पता महाराज को मालूम हो जाता है तो वे निराश हो जाते हैं। इसी समय धर्मपद उन्हें प्रोत्साहित करता है। अंत में रात के समय महाराज जगन्नाद्‌पुरी जाने की योजना बनाते हैं। सभी शिल्पी उन्हें सहयोग देते हैं और रात के समय महाराज नरसिंहदेव जगन्नाद्‌पुरी चले जाते हैं। जगन्नाद्‌पुरी जाकर पौरसभा की सहायता से सैन्य के साथ वापस आने की योजना थी। महाराज नरसिंहदेव प्रतापी, वीरता, उदारता, कला मर्मज्ञता, प्रजावत्सलता आदि अनेक महान गुणों से युक्त राजा है। लेकिन राजनीतिक दाँव-पेंचों में वे एक अदूरदर्शी राजनीतिक ही कहे जाएँगे। जब उसे सूचना मिलती है कि महामात्य चालुक्य ने शिल्पियों की जमीन सामंतों को देने की घोषणा की है तब नरसिंहदेव का यह कथन है कि हम उनका भ्रम दूर करेंगे। राजधानी लौटने पर शिल्पियों के कुटुंबियों को उनकी जमीन लौटाने की आज्ञा दी जाएगी। सामंतों के लिए दूसरा प्रबंध किया जाएगा। लेकिन समय के साथ समझौता करता चलता है और शायद इसलिए नरसिंहदेव को न केवल धर्मपद की प्रधान शिल्पी मानने को विवश होना पड़ा बल्कि उसका सहर्ष स्वागत भी किया। यहाँ तक कि नरसिंहदेव धर्मपद के माध्यम से अपनी महत्तर आकांक्षाओं की पूरी होते देख यह कहने में भी नहीं चूकते कि "युवक तुम निर्भय होकर हमारी उन्मुक्त जाह्नवी के भागीरथ बने।"[58]

1.6 राजराज चालुक्य -

'कोणार्क' नाटक का एक क्रूर पात्र है राजराज चालुक्य। राजराज चालुक्य उत्कल राजा का महामात्य है।

1.6.1 षड़यंत्रकारी क्रूर महामात्य -

राजराज चालुक्य केवल षड़यंत्रकारी और क्रूर महामात्य है। उसके मन में उत्कल की नरेश बनने की इच्छा है। राजराज चालुक्य हमेशा शिल्पियों को परेशान करते रहते हैं। वह शिल्पियों और महाशिल्पी विशु को भी धमकी देता है कि - "आज से एक सप्ताह के अंदर यदि कोणार्क देवालय पूरा नहीं हुआ तो तुम लोगों के हाथ काट दिए जाएँगे।"[59] महामात्य की यह बात सुनकर सभी शिल्पि भयभीत हो जाते हैं। विशु का राजराज चालुक्य की बात पर विश्वास नहीं बैठता। तब चालुक्य उसे कहता है- "शिल्पियों के हाथ काट लिए जाएँगे। आज से आठवें रोज या तो मंदिर में सूर्यदेव की मूर्ति का प्रतिष्ठान होगा या तुम बारह सौ शिल्पियों की भुजाओं पर प्रहार।"[60] साथ में महामात्य यह भी कहता है कि यह सब महाराज नरसिंहदेव की आज्ञा है। उसका पालन करना ही है। इस तरह महामात्य अन्यायी तथा शिल्पियों का शोषण करनेवाला शासक के रूप में हमारे सामने प्रस्तुत होता है।

द्वितीय अंक में राजराज चालुक्य की कूटनीति सफल होती है। मंदिर की ओर आते वक्त रथ की धूरी टूटने का वह बहाना करता है। महाराज के पीछे आकर महाराज को और मंदिर को घेर लेता है। महाराज को शैवालिक द्वारा चुनौती देता है। तब महाराज शिल्पियों का कहना मानकर पीछे की ओर से रात के अंधेरे में जगन्नाथपुरी चले जाते हैं।

तृतीय अंक में राजराज चालुक्य महाराज नरसिंहदेव को बंधी बनाने के लिए ढूँढ़ रहा है। विशु और सौम्यश्रीदत्त को महाराज के बारे में पूछता है तथा उन्हें धमकी देता है कि "देखता हूँ तुम भी उसी राह पर जाना चाहती हो जिस पर उस उद्दंड़ धर्म को भेजा गया है। उसके शरीर के टुकड़े-टुकड़े करके इसी क्षण समुद्र में फेंके जा रहे हैं, जानती हो।"[61] पूरे मंदिर में महाराज कहीं नहीं नजर आते इसलिए चालुक्य क्रोधित होता है। वह शैवालिक को कपाट तोड़ने की आज्ञा देता है। उसी समय विशु चुंबक को तोड़ता है और उसी में शैवालिक के साथ महामात्य की भी मृत्यु हो जाती है।

इस प्रकार महामात्य चालुक्य एक क्रूर विश्वासघाती, अविनयी रूप में सामने आता है। पूरे नाटक पर चालुक्य के कारण भय और अत्याचार की छाया दिखाई पड़ती है।

1.7 सौम्यश्रीदत्त -

सौम्यश्रीदत्त विशु का मित्र और कोणार्क मंदिर का नाट्याचार्य है। सौम्यश्रीदत्त प्रथम अंक में राजीव के साथ चर्चा करते हुए दर्शकों के सामने आता है। सौम्यश्रीदत्त प्रधान पाषाण कोत्तर्क राजीव के साथ मूर्तियों के बारे में बातचीत कर रहा है। राजीव मंदिर उड़ने की बात करता है तब सौम्यश्रीदत्त कहता है- ''मंदिर उड़ेगा नहीं, नाट्याचार्य सौम्यश्री के संकेत पर जब नट मंदिर में देव दासियाँ नृत्य करेंगी तो ताल देने के लिए कोणार्क देवालय ही थिरक उठेगा। ता थेई, ता थेई ता।''[62] सौम्यश्री महामात्य के अन्याय और अत्याचार भी विशु को कहता है। वह विशु का सबसे प्रिय मित्र है। वह कुंती और सूर्यदेव के प्रणय प्रसंग पर संगीतक प्रदर्शित करना चाहता है। वह कुंती और सूर्यदेव का प्रणय प्रसंग विशु को बताता है तथा विलास के बाद वियोग की स्थिति किस प्रकार होती है यह समझाने के लिए गीतों में गोपियों की विरह वेदना और मुद्राओं में शकुंतला की विवशता आदि बातें बताता है। उसी समय विशु को अपनी प्रेयसी की याद आती है।

धर्मपद जब मंदिर को पूरा करने की बात कहता है, तब प्रधान शिल्पी विशु के मंदिर निर्माण में किस प्रकार के प्रयास थे यह बताता है। जब चालुक्य शिल्पियों को धमकी देकर चला जाता है तब सौम्यश्रीदत्त बहुत घबराता है। जब धर्मपद महामात्य के अन्याय की बात महाराज के सामने बताता है तब सौम्यश्रीदत्त कहता है- ''महाराज की आज्ञा थी न कि यदि सात दिन के अंदर मंदिर पूरा न होगा तो सारे शिल्पियों के हाथ काट लिए जाएँगे।''[63] जब धर्मपद चालुक्य का सामना करने की बात करता है तब सौम्यश्री उसको प्रोत्साहन देता है।

विशु के साथ सौम्यश्री घायल शिल्पियों पर पट्टियाँ बांधने का काम करता है। धर्मपद के बारे में उन दोनों में चर्चा हो रही है। उसके गले के कंठहार सौम्य श्रीदत्त के हाथ में देखकर विशु विह्वल हो उठता है। अंत में सौम्यश्री धर्मपद को बताता है कि विशु तुम्हारा पिता है।

सौम्यश्री विशुद्ध रूप से कला को समर्पित, सरल हृदय लोकोपकारी सहायक, सहृदय और ममत्वपूर्ण मित्रभाव रखनेवाला व्यक्ति है। विशु की तरह उनके मन में भावावेग भावावेश नहीं बन जाते। कल्पना की रंगीन दुनिया में रहते हुए भी वह जीवन के कटु यथार्थ को पहचानते हैं।

1.8 नरसिंहराव -

शारदीया नाटक के प्रधान पात्र एवं नायक है नरसिंहराव। बायजाबाई (नायिका) की माँ को दिए हुए वचन की पूर्ति करके वह उससे मिलने आया है। जब बायजाबाई उसे कागल छोड़ने का कारण पूछती है तब नरसिंहराव कहता है- "बायजाबाई आज अगर तुम्हारी माँ होती तो उनसे इस प्रश्न का उत्तर दिलवाता।"[64]

1.8.1 प्रेमी नरसिंहराव -

नरसिंहराव की प्रेयसी है बायजाबाई। बायजाबाई को नरसिंहराव उसकी माँ के साथ किया हुआ वायदा बताता है और उसकी पूर्ति के लिए वह सौदागर और कारिगर भी बना यह बताते हैं। नरसिंहराव एक प्रेमी जो अपने प्यार को पाने के लिए बड़ी-से-बड़ी कठिनाइयाँ उठानेवाला चित्रित किया है।

नरसिंहराव बायजाबाई से विदा लेकर अपनी सिंधिया महाराज के दल में शामिल होने की बात कहता है तब बायजाबाई दो बरस पहले शरद-पूर्णिमा के दिन उनकी भेंट और जुदाई के बारे में कहती है। उसी समय नरसिंहराव उसे कहता है- "चाहे मैं तुम्हारे निकट होता हूँ चाहे तुमसे दूर, शरद की पूर्णिमा की तरह तुम मेरे मानस में छाई रहती हो। निर्मल, शीतल मन के कोने-कोने को भासमान करती रहती हो। गहरे अंधकार में मैंने मुसकाती चाँदनी का अनुभव किया है। बायजाबाई तुम ही तो मेरी चाँदनी हो, मेरी शारदीया।"[65] नरसिंह को बायजाबाई अपनी रक्त की तिलक लगाकर एक वीर पत्नी की तरह विदा करती है।

नरसिंह को गढ़पति द्वारा यह मालूम होता है कि आज शरद पूर्णिमा है। वह अपने बुने हुए कपड़े को शरद चाँदनी में देखता है तो उसे बीती यादें सताने लगती हैं। वह स्वगत बोलने लगता है। आज चाँदनी आई है, बायजा तुम्हें भी आना होगा, तुम्हें मालुम नहीं कि राष्ट्रद्रोह के अपराध में मुझे बंदी बनाया है। मैं खर्दा के युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुआ। इतने में गढ़पति आकर नरसिंह को बताता है कि महारानी आ रही है। तुम उसे वह साड़ी भेंट दो शायद वह तुम्हें मुक्त करेगा। उस वक्त नरसिंह उसे पुकार कर कहता है- "गढ़पति.... ओह चले गए। यह कपड़ा यह स्मृतियों की ताना-बाना महारानी को भेंट दूँ। ....असंभव। ....ओह शारदीये। ये लोग

कितने ना समझ कितने नादान पत्थर समझदार हैं ज्यो तुम्हें मेरे पास आने देते हैं। जो रात में मुंदते कमल की पंखुड़ियाँ बन जाते हैं। लेकिन दुनियावालों का कोलाहल। चलो तुम मुझे यहाँ से ले चलो अपने चाँदी से जगमगाते अंबर में। राजाओं और महारानी की चमक-दमक से परे, युद्ध और हलचल से दूर बहुत दूर, जहाँ तारे गाते हैं, जहाँ नीले आसमान की झनकार ज्योति की लय पर झूमती है, जहाँ ऐ तुम कहाँ जा रही हो शारदीये। शारदीये। शारदीये।"[66]

1.8.2 राष्ट्रप्रेमी नरसिंहराव -

मराठों के शिबिर के तंबू में मराठा सरदारों में निजाम पर आक्रमण करने के बारे में चर्चा हो रही है, उसी समय नरसिंह का प्रवेश होता है और सभी को यह बात बता देता है कि आज रात में निजाम के जश्न में मराठा सरदारों की नकल उतारी जाएगी और हमारे लिए यह सुनहरा मौका है। नरसिंह स्वयं रणनीति तय करता है। उनके मातनुसार सभी सिपाहियों की जगह निश्चित की जाती है। यहाँ नरसिंह का रणनीति और देशप्रम उजागर होता है।

नरसिंह अगली रात को ही नाटक के लोगों के साथ मिलकर जाने की बात करता है। पुल काट देने की बात तब भाऊ उसे फिर से कह देते हैं तब नरसिंह कहता है- "कोशिश करूँगा.... सेनापति पंथ के आशिर्वाद से यह अनुष्ठान पूरा करूँगा।"[67] इस प्रकार हमला करने से पूर्व ही मराठा सरदारों में नरसिंह सारी बातें खुलकर कहता है। यहाँ नरसिंह की राष्ट्रवादिता दिखाई देती है। सिंधिया महाराज के सामने नरसिंह और एक बात खुलकर कहता है। वह कहता है कि इस युद्ध में जीत हमारी होगी। विजय के बाद जब निजाम को उद्दंड़ता और चौथ का निबटारा करने के लिए आप बैठ जाएँगे तो स्पष्ट शब्दों में आपको दो घोषणाएँ करनी होंगी- "पहली घोषणा तो यह कि दोनों राज्यों में हिंदु और मुसलमानों को अपने धर्म-काज करने की पूरी आज़ादी होगी न दख्खन में गोवध होगा न महाराष्ट्र में खुदापरस्ती पर रोक-टोक और दूसरी घोषणा यह कि हिंदू और मुसलमान दोनों परमात्मा की एक बराबर संतान है। इसलिए न हिंदू मंदिरों पर आघात होगा न मुसलमान मजारों, पीरों और पैगंबरों का अपमान किया जाएगा। दोनों एक-दूसरे के साथ मेल-मिलाप से रहेंगे- एक माँ की गोदी में दो भाई।"[68] यहाँ नरसिंह हिंदू-मुस्लिम एकता चाहता है। राष्ट्रीय एकता को बनाए रखने का प्रयास उसी के द्वारा किया जाता है।

नरसिंह युद्ध के मैदान से भाऊ के पास आकर पुल तोड़ने का अपना काम तमाम होने की बात कहता है। लेकिन साथ में यह बात भी उसे चैन से नहीं बैठने देती कि भाऊ का भतीजा विठ्ठल किसी की गोली का शिकार हुआ। इस बात पर वह भाऊ के साथ चर्चा करता है तभी तक अनुचर भाऊ को बुलाकर ले जाता है। नरसिंह अकेला विचारमग्न स्वगतलाप करता है उसी समय चार सैनिक आकर उसे बंदी बनाकर ले जाते हैं।

सरदार जिन्सेवाले और नरसिंह की बातचीत ग्वालियर किले के अंधकारपूर्ण तहखाने में होती है। सरदार नरसिंहराव की मौत की सजा कम करके उसे आजीवन कारावास की सजा दी गई है। यह बता रहा है। साथ में नरसिंह पर दुश्मन के साथ मिलने का आरोप लगाया है। यह सब सुनकर नरसिंह विह्वल हो उठता है। जिन्सेवाले से वह कहता है- ''सरदार जिन्सेवाले यह सरासर झूठ है। मुझे नहीं मालूम की गोलियों की बौछार क्यों और कहाँ से आई, लेकिन मेरे इशारे से ? उफ यह झूठ है यह मिथ्यारोप है।''[69] इस प्रकार अपने ऊपर किए गए आरोप झूठ हैं तथा आप उस पर यकीन कर सकते हैं ऐसा सवाल नरसिंह जिन्सेवाले से करता है। तभी महाराज की बात नरसिंह को आधा मुसलमान कहने की उसे मालूम हो जाती है। हिंदू-मुस्लिम दोनों जातियों के बारे में की गई घोषणाओं का अमल हुआ है। यह सुनकर नरसिंह खुश होता है। समय काटने के लिए वह गढ़पति से एक छोटा-सा करघा मँगवाने की बात करता है। उसके द्वारा वह शारदीया को पंचतोलिया साड़ी बुनना चाहता है। यहाँ नरसिंह का शारदीया के प्रति उत्कट प्रेमभाव प्रकट हुआ है।

इस तरह नरसिंह शारदीया की याद में सिसकने लगता है। उसी समय जिन्सेवाले कहता है कि नरसिंहराव तुम्हारा शारदीया तुम्हारे सामने खड़ी है। बायजाबाई उसे बताता है कि उसके पिता ने ही अपनी महत्त्वाकांक्षा के लिए उसे किस प्रकार बली दिया। तथा गोलियों की बौछार भी उसने ही की थी। साथ में वह कहती है कि सिंधिया महाराज ने मुझे इजाजत दी है कि तुम्हें रिहा करूँ। तब नरसिंह उसे कहता है- ''रिहाई ! महारानी किस जीवन के लिए रिहाई ?''[70] नरसिंह महारानी को यह बताता है कि तुम मुझे छुड़ाने आई तो तुम्हें मेरी भी एक भेंट स्वीकार करनी होगी, ऐसा कहकर वह उसे पंचतोलिया साड़ी भेंट देता है। उस वक्त बायजाबाई नरसिंह को अपने

साथ चलाने के लिए कहती है। नरसिंह लेकिन उसको कहता है- "मैं यही रहूँगा। क्योंकि तुम यही हो महारानी नहीं, बायजाबाई नहीं, लेकिन तुम! तुम मेरी शारदीया। मेरी शारदीया... तुम जो मेरी हो, हमेशा थी, हमेशा रहोगी।"[71] यहाँ नरसिंह का बायजाबाई के प्रति प्रेम का परमोच्च भाव प्रकट हुआ है।

नरसिंह वीर, साहसी एवं कोमल हृदय का व्यक्ति है। बायजाबाई के प्रति उसका प्रेम निश्चल है। बायजाबाई को खोकर भी वह अंतः उससे दूर होना नहीं चाहता। नरसिंहराव के हृदय में शुद्ध मानवीय प्रेम की अजस्र धारा प्रवाहित होती रहती है। जिसकी लहरों में बायजाबाई का प्रतिबिंब झलकता है। नरसिंहराव के मस्तिष्क में अंतर्द्वंद्व की अनेक रेखाएँ उभरती रहती हैं। साड़ी बुनने के लिए वह अपनी अंगुलियों में छिद्र तक बना लेता है। प्रेम की अंतिम परिणति उनके मानसिक संघर्ष को और बढ़ा देती है। उसकी महत्वाकांक्षा जीवित रही है। इस के लिए उसको आजीवन कारावास भोगना पड़ता है।

1.9 सखाराम घाटगे (सर्जेराव) -

सखाराम घाटगे शारदीया नाटक में खलनायक के रूप में प्रस्तुत होता है। वह नाटक की नायिका बायजाबाई का पिता है। सर्जेराव का चरित्र गतिशील चरित्र है। वह सखाराम से सर्जेराव बनता है और जीवन के खेल में कई पोशाकें धारण करता है। सिंधिया के चरित्र का केंद्रबिंदु उसका विलास है।

1.9.1 क्रूर और महत्वाकांक्षी सखाराम -

सखाराम घाटगे कागल गाँव के किल्लेदार और बाद में नाना फडणवीस का कर्मचारी बन जाता है। बायजाबाई द्वारा जब उसे पता चलता है कि नरसिंह आया था और बायजाबाई उससे शादी करना चाहती है यह सुनकर वह क्रोधित होता है। उस वक्त बायजाबाई से वह कहता है- तेरी शादी मेरी इच्छा से होगी मुझे मेरे अपमान का बदला लेना है। बायजा उसकी माँ के वायदे के बारे में कहती है तब सर्जेराव तेजी से उसे कहता है- "किसका वायदा? कैसा वायदा? मैं नहीं जानता, तेरी माँ ने क्या-क्या वायदा किया था, मैं इतना जानता हूँ कि तुझे मेरी आज्ञा माननी है, माननी होगी। नादान लड़की। तेरी पिता की महत्वाकांक्षा के यज्ञ को पूरा करने

के लिए अगर तेरी आहुति की जरूरत हो तो भी मैं नहीं झिझकूँगा।"[72] इस वाक्य से सर्जेराव की महत्वाकांक्षा तथा कुटिल नीति का पता हमें लग जाता है। अपने अरमानों के लिए अपने पुत्री के अरमानों का गला घोटकर उसकी आहुति देना चाहता है।

मराठा सरदारों की सारी बातें सर्जेराव छिपकर सुनता है और नरसिंह के बारे में महाराज सिंधिया के मन में जहर घोल देना है। साथ में महाराज को यह सारी बातें सच लगती हैं। वे सर्जेराव की चाल नहीं समझते जब महाराज सर्जेराव से दूसरी बात करना चाहते हैं तब सर्जेराव अपने ब्राह्मण होने का नाटक करता है। सिंधिया महाराज उसे माला-माल करने और नौकरी का वायदा करते हैं।

सर्जेराव सिंधिया महाराज को यह बात बता देता है कि नाना फडणवीस की तिजौरियों में नौ करोड़ रुपया है। महाराज इस बात को सुनकर आश्चर्य चकित हो जाते हैं। वे सर्जेराव को बताते हैं कि तुम्हें जल्दी ही हमारे दरबार में आना होगा। यहाँ भी सर्जेराव अपनी कूटनीति अपनाता है और नरसिंह को विश्वासघाती ठहराता है। वह सिंधिया के सामने नरसिंह की हिंदू-मुस्लिम की एकता की बातें निजाम के दल में होनेवाली नकल की बातें और युद्ध के मोर्चे पर जहाँ परशुराम भाऊ का स्थान नरसिंह ने बताया था, उस पर दुश्मन की गोलाबारी होना आदि बातों द्वारा नरसिंह को विश्वासघाती बनाकर वह उसे समाप्त करना चाहता है। क्योंकि सर्जेराव के रास्ते में वही एकमात्र काँटा उसे नजर आता है। सिंधिया महाराज से वह यह बात अपने पर छोड़ने के लिए कहता है। महाराज दुविधा में पड़ जाते हैं तब सर्जेराव उन्हें कहता है- "दुविधा छोड़िए, सिंधिया महाराज। ....आपको और मुझे साथ-साथ बहुत से काम करने हैं। यह तो मामूली-सी कार्रवाई है। ....यशस्वियों के भविष्य का निमंत्रण रक्त के वर्णों में लिखा होता है।"[73] इस प्रकार सर्जेराव अपनी कूटनीति को अपनाता है। वह एक अनुचर का पहनावा पहनकर अपने साथियों के साथ नरसिंह को बंदी बनाता है।

सर्जेराव की दुष्टता और कुटिलता का आभास मिल जाता है। सर्जेराव अपनी पुत्री पर मीठे शब्दों का जाल फैलाकर उसे विश्वास में लेता है और बाद में उसे बताता है कि "बायजाबाई खर्दा की लड़ाई ने हमारे अनेक मंसूबे पूरे किए, पर एक मंसूबा तोड़ भी दिया।

....नरसिंहराव खर्दा के .... युद्ध में मारा गया।"[74] यह बात सर्जेराव बायजा को इतने विश्वास के साथ कहता है फिर भी वह पूछती है कि इतने दिनों बताया क्यों नहीं। तब नरसिंह के प्रति बायजा के मन में नफरत पैदा करने के लिए वह झूठ बोलता है। वह कहता है कि नरसिंह दुश्मन की बाजू में लड़ रहा था, मराठों के विरूद्ध और दुश्मन की फौज से मरनेवालों का ब्यौरा देर से ही मिलता है। बायजा रोने लगती है तब सर्जेराव उसे समझाता है। इस प्रकार सर्जेराव अपनी धूर्तता और दुष्टता का प्रयोग करके अपनी महत्वाकांक्षा को फलते-फूलते देखता है।

सर्जेराव खर्दा युद्ध के बाद नानाफडणवीस की नौकरी छोड़कर सिंधिया का कर्मचारी बन जाता है। उसने दौलतराव सिंधिया को दुर्व्यसनों के व्हासोन्मुखी पथ पर अग्रसर करके अपना मतलब साधा है। सर्जेराव सिंधिया को अपनी कठपुतली बना देता है। सर्जेराव सिंधिया को शराब पीने की आदत इतनी लगवा देता है कि सिंधिया को शराब के बिना चैन नहीं मिलता। सर्जेराव उसे विभिन्न प्रकार की देशी-विदेशी शराब पिलाता है। नशे में ही उसके साथ बातचीत करके अपने दुष्ट विचार स्वीकार कराता है। वह अपने लिए प्रधानमंत्री के पद की माँग करता है और उसके बदले में अपनी बेटी की शादी सिंधिया के साथ तय करता है। अपनी महत्वाकांक्षा के लिए अपनी बेटी को ही इसी तरह बली चढ़ाता है। नशे में ही महाराज की ओर से प्रधानमंत्री बनाने के आज्ञापत्र पर हस्ताक्षर करवाता है। स्वयं नाटककार माथुर ने सर्जेराव के बारे में लिखा है-
"कैसा भयानक चरित्र था सर्जेराव घाटगे का, कैसे दहला देनेवाले कारनामें थे उसके.... यह सर्जेराव आसुरी वृत्तियों का अवतार स्वरूप था।"[75]

सर्जेराव घाटगे के उपर्युक्त चरित्र-चित्रण को देखकर हम यह महसूस करते हैं कि सर्जेराव का चरित्र कुटिलता और दाँव-पेचों से भरा हुआ है। उसमें झूठ, फरेब और आसुरी वृत्ति लबालब भरी हुई है। अपनी महत्वाकांक्षा के लिए स्वयं की पुत्री को बली चढ़ाने में वह जरा भी हिचकिचाता नहीं है। इस तरह सर्जेराव एक क्रूर और महत्वाकांक्षी व्यक्ति के रूप में हमारे सामने आता है।

2. प्रमुख नारी पात्र-

2.1. उर्वी -

'पहला राजा' नाटक की उर्वी प्रतीक भी है और व्यक्तित्व संपन्न चरित्र भी है। उर्वी पृथु और कवष की बाल सखी है।

2.1.1 प्रेयसी उर्वी -

उर्वी धरती का प्रतीक है। साथ ही उर्वी का यथार्थ चरित्र भी महत्वपूर्ण है। वह कवष और पृथु को समान रूप से प्रेम करती है। अर्चना को समझाते हुए वह कहती है- "नेह भी खोज है। मेरे मन का मेघ दो तालों के दर्पणों में झाँकता है।"[76] वह कुलूत की घाटी से ब्रह्मावर्त इसीलिए आई है क्योंकि, "ब्रह्मावर्त बहेलियों का जाल है। दो नादान कबूतर कही उसमें फस न जाएँ।"[77] वह पृथु और कवष को लेकर चिंतित है। ब्रह्मावर्त में किसी के जाल में भी वह दोनों फँस न जाएँ। वह उतनी ही देर यहाँ रूकना चाहती है, जितना उन तीनों के लौटने के लिए जरूरी हो। इसे भाग्य की विड़ंबना कहें या परिस्थितियों की क्रूरता। दोनों भी कह सकता है। उसमें स्वाभिमान इतना है कि अर्चना के प्रश्न "सुनो ! मेरे साथ रहोगी ?" का स्पष्ट उत्तर देती है- "दासी बनकर या सखी ?"[78]

2.1.2 धरती का प्रतीक -

पहला राजा की उर्वी प्रतीक भी है और व्यक्तित्व संपन्न चरित्र भी है। उर्वी पृथु और कवष की बाल सखी है। वह कुलूत की सुदूर घाटियों से उनकी खोज में ब्रह्मावर्त चली आयी है। उर्वी का शब्दार्थ है पृथ्वी या धरती। नाटककार ने पृथु की कथा में आए धरती की प्रतीक को गोचर और प्रत्यक्ष बनने के लिए उसे प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया। वह अर्चना से कहती है- "मैं धरती को हथेली की तरह जानती हूँ.... कहाँ उसका रस है, कहाँ उसके खजाने।"[79] तथा "मेरी सखी एक ही है.... धरती.... धरती जो नशे की तरह तुझमें घुल मिल जाती है।"[80] वह भविष्यवाणी करती है कि आनेवाले समय में कड़कड़ाती धूप की ज्वाला में ब्रह्मावर्त के ताल-तलैया, नदी नाले सब सूख जाएँगे। बेचारी धरती सिकूड़ जाएगी। नाटक के तीसरे अंक में वह पृथु को धरती का समुचित रूप से दोहन करने के लिए प्रेरित करती है। धरती उसकी नस-नस में समा

गई है। वह धरती की आवाज भी है। वह पुकारकर पृथु से कहती है- "हाँ... उठाओ यह धनुष और इसकी कोटि से उखाड़ो शिलाओं को, ऊँचे-ऊँचे टीलों को समतल करो। खेतों में पानी ठहरेगा। मिट्टी में नमी आएगी। हरियाली फैलेगी। बालु में रूकी हुई नदियों की धाराएँ फिर बह निकलेंगी.... और तब सर्वकाम दुहा गौ की धरती माँ के स्तनों में सैकड़ों मानव संतान के लिए दूध उतरेगा।"[81] उर्वी ही पृथु को स्वप्न का अर्थ समझाती है।

तीसरे अंक में पृथु भूचंड़िका का पूजन ध्वस्त करने के लिए तैयार है। तभी उर्वी उसे समझाती है कि भूचंड़िका वीभत्स दानवी नहीं, माँ है- भूमाता, धरती माँ, उर्वी उसे आर्य, अनार्य, नाग और निषाध सबको मिलाने के लिए कहती है। उर्वी ही पृथु को उसके स्वप्न का अर्थ समझाती है। वह उसे सृजन कार्य की ओर प्रेरित करती हुई कहती है- "तुम राजा हो, प्रजा के नेता हो, तुम्हारा पुरुषार्थ सिर्फ युद्ध और संघर्ष में ही तो नहीं है। मैं वसुंधरा हूँ, मुझे दुहकर अभिष्ट वस्तुओं को निकालने में भी तुम्हारा पुरुषार्थ है और तुम्हारी प्रजा का धर्म है। तुम आर्य कुल के पहले राजा हो। हे राजन, कर्मपुरुष बनो।"[82]

उर्वी पृथ्वी की ही दूसरी संज्ञा है। माथुर ने जड़ धरती और उपास्य भूचंड़िका के जीवंत प्रतीक के रूप में ही उसका चित्रण किया है। वही धरती का सच्चा रूप प्रकट कर पृथु को प्रबोध कराती है। उसी के माध्यम से पृथु का मोह भंग होता है, "हाँ, मैं जड़ हूँ क्योंकि यह वसुधा, यह धरती जड़ है और मेरी नस-नस में समा गई है। मेरी बात सुनो, क्योंकि मैं वह नहीं हूँ जिसे तुमने त्रिगर्त में जाना। मैं धरती की आवाज हूँ, धरती जो कुछ देती है, बहुत कुछ सहती है।"[83] और फिर! "वह देखो दिग-दिगंत तक फैले यह टीले, ये ढलान, ऊँची-नीची भूमि, कहीं भी समतल नहीं, जगह-जगह पत्थर और शिलाएँ। वर्षा होती है, पानी गिरता है- कभी मूसलधार, कभी बौछार, लेकिन मिट्टी गीली भी नहीं हो पाती सब बह जाता है, उपजाऊ मिट्टी और मिट्टी का धन, क्योंकि तुमने और तुम्हारी प्रजा ने जमीन को समतल बनाकर उपज करने की तो कोशिश ही नहीं की।"[84] पृथ्वी के दोहन की सारी प्रतीकात्मक क्रिया के मूल में उर्वी की प्रेरणा विद्यमान दिखाई देती है। वह धरती के यथार्थ की प्रतीक भी है और काल्पनिक संभावनाओं को भी माथुर की अवधारणा के अनुरूप वह यथार्थ और प्रतीक कर्म और कल्पना इन दो ओर-छोरों के बीच

विहरती है। उर्वी धरती की आत्मा है। उर्वी पुरुषार्थ को चुनौती है। उर्वी लोक-जीवन की अंतर ध्वनि है।

2.2. *अर्चना -*

अर्चना या अर्चि पृथु की पत्नी है। श्रीमत भागवत के अनुसार जिस समय वेन के दाहिनी भुजा से पृथु उत्पन्न है तब से अर्चना भी उनके पत्नी के रूप में उपस्थित है। नाटककार ने अर्चना को एक आश्रम कन्या और गर्ग मुनि की दत्तक पुत्री के रूप में प्रस्तुत किया है।

2.2.1 *ईर्ष्यालु पत्नी -*

नाटक में अर्चना का प्रथम दर्शन उर्वी के साथ प्रथम अंक में होता है। उर्वी को अर्चना अपनी सखी बनाना चाहती है। परंतु उर्वी नहीं मानती। अर्चना रहस्यमय ढंग से मंच से चली जाती है। मुनिगण अर्चना को रानी बना देते हैं। इसका कारण है कि पृथु अकेला न रहे। वह पत्नी के रूप में पृथु से कहती है- ''मैं आपकी अर्धांगिनी हूँ जो बयार आपको छुएगी क्या वह मुझे नहीं झकझोरेगी।''[85] वह पृथु पर संदेह करती है कि वह उर्वी को प्रेम करता है। वह पृथु से स्पष्ट कह देती है - ''आपकी ऊब, मन का यह उचाट। अब समझी प्रेयसी के पाश के आगे गृहणी का बंधन बासी लगता है न।''[86] अर्चना केवल ईर्ष्यालु पत्नी ही नहीं निड़र और साहसी नारी भी है।

2.2.3 *साहसी नारी -*

अर्चना एक साहसी नारी है। पृथु के निहत्थे भीड़ में जाने की बात सुनकर वह तुरंत उत्तेजित भीड़ में चली जाती है। सरस्वती पार अनार्य खंड़हरों में राजा के जाने की बात सुनकर वह भी पीछे जाना चाहती है। गर्ग के मना करने पर वह उत्तर देती है- ''पिताजी, स्त्री की सुकुमारिता अलंकार है, बंधन नहीं। आर्यपुत्र की किस समय यात्रा में मैं उनके साथ नहीं गई ?''[87] और वह वहाँ भी पहुँच जाती है। अर्चना में नाटककार ने प्रेयसी, पत्नी रानी और नारी के रूपों के विभिन्न रंग भर कर उसके चरित्र को सजीव बना दिया है।

अर्चना अथवा अर्चि को नाटककार ने ऐश्वर्य भोग और काम के साधक तत्व के प्रतीक रूप में प्रस्तुत किया है। महत्वाकांक्षी पुरुष में कर्म की स्फूर्ति और काम की बलवती लालसा का सहज अस्तित्व को उसी के माध्यम से सार्थकता मिली है। इस अर्थ में उसका स्वरूप

उर्वी से भिन्न है। वह अमृत रूप काम का कुंभ बनती है और पृथु को जीवन रस से अभिषिक्त करती है। किंतु कर्म की प्रेरणा के अभाव में वह पृथु को पूरी तरह अपने में समेट नहीं पाती।

2.3. बायजाबाई -

'शारदीया' नाटक की नायिका और प्रधान स्त्री पात्र है बायजाबाई। बायजाबाई सर्जेराव घाटगे की पुत्री तथा नरसिंहराव की प्रेयसी के रूप में चित्रित की है।

2.3.1 प्रेमिका बायजाबाई -

नरसिंहराव और बायजाबाई के संवादों द्‌वारा उनका प्यार स्पष्ट होता है। नरसिंह बायजा को यह याद दिलाता है कि बायजाबाई की माँ को दिया हुआ वचन उसने किस प्रकार निभाया है। वह युद्‌ध के मैदान में जाने के लिए बायजाबाई से विदाई ले रहा है तब बायजा पीड़ित हो उठती है। वह कहती है- ''सौदागर फिर अपने काफिले को लौट चला।''[88] नरसिंह के युद्‌ध क्षेत्र में जाने से पहले उससे एक बार मिलने की बात बायजा कहती है। नरसिंह उसे कहता है- हमारे विदा वियोग के लंब पथ पर शरद पूर्णिमा चांदी बिखेर देती है। तब बायजा कहती है- ''मेरे लिए तो अंगारे ही रहते हैं, नरसिंह। कागल में शरद् की वे चाँदनी रातें.... कब हमें वापस मिलेगी नरसिंहराव ?''[89] इस तरह बायजा बिदाई के समय पर अत्यंत विह्वल हो उठती है। उसका एकनिष्ठ प्रेम उमड़ आता है। अंत में एकवीर क्षत्रानी की तरह बायजा अपनी उंगली से रक्त निकाल कर रक्त का टीका नरसिंह को लगा कर विदा करती है।

नरसिंह के प्रति बायजाबाई का प्रेम उत्कड़ बन पड़ा है। अपने प्यार के बारे में अपने पिता को बताने के लिए जब सरनाबाई तैयार नहीं होती तब वह स्वयं अपने मन की बात सर्जेराव से कहती है। बायजाबाई का नरसिंह के प्रति प्यार देखकर सर्जेराव क्रोधित होते हैं। वह अपनी महत्वाकांक्षा के लिए अपनी बेटी के जीवन की आहुति देना चाहता है। बायजाबाई को यह बात मंजूर नहीं है। वह सर्जेराव से कहती है- ''मुझे मरण का आदेश दो बाबा, लेकिन नरसिंह को।''[90] यहाँ बायजाबाई अपने प्राणों की आहुति देने के लिए तैयार होती है। यहाँ बायजा का एक प्रेयसी का सुंदर रूप बन पड़ा है जो अपने प्यार को पाने के लिए कुछ भी करने के लिए तैयार होती है। अपने प्राणों से भी अधिक वह अपने प्रेम को चाहती है।

सर्जेराव ने अपनी पुत्री की मन बहलाव के लिए तथा उस पर निगाह रखने के लिए रहीमन नाम की एक नर्तकी रखी है। लेकिन बायजाबाई का मन उस गीत संगीत में नहीं रमता। उसकी आँखों के सामने हर समय नरसिंह की छबी ही आती है। वह हर समय उसी को पाने के लिए छटपटा रही है। गोकुल की गोपियों की तरह मथुरा में ही विरह की आग में जलना उसे पसंद नहीं है।

अंत में बायजाबाई हमारे सामने महारानी बनकर आती है। सर्जेराव ने अपनी महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए सिंधिया के साथ बायजा की शादी करके दीवान का पद हासिल किया है। सिंधिया महाराज से बायजा को पता चलता है कि नरसिंह ग्वालियर में बंदी बनाया गया है। अपने पिता की सारी साजिशों का पता उसे लगता है। वह नरसिंह से मिलने के लिए शरद पूर्णिमा के दिन जाती है। दोनों की मुलाकात होती है। अपने पिता ने स्वार्थ के लिए जो कुछ किया उन सारी बातों को नरसिंह के सामने वह खोल देती है। अपने प्रेमी के निकट होकर भी वह अपने उस मधुर मिलन के सपने को पूरा नहीं कर सकती। इस मौके पर नरसिंह बायजाबाई को पंचतोलिया साड़ी भेंट कराता है। अपने भूतपूर्व प्रेमी ने अपनी ऊँगली में सूराख करके अपने लिए साड़ी बुनी और आज उसे वह भेंट कर रहा है। यह देखकर बायजा की आँखों से आँसू बहने लगते हैं। नरसिंह बायजा को बताता है- ''तुम रो रही हो बायजाबाई। रोती क्यों हो ? तुम्हारे टीके ने मुझे बचाया.... और... यह...साड़ी.... यह मेरा रक्तदान ...यह अंचल.... यह तुम्हारे नए जीवन में तुम्हारी रक्षा करें।''[91] बायजाबाई का दिल पीड़ा से भर उठता है। वह उसे फिर से रिहाई की बात कहती है। उसे आज्ञापत्र के बारे में भी कहती है। लेकिन नरसिंह तहखाने से बाहर नहीं आता। यहाँ दोनों की एक-दूसरे के प्रति त्याग की भावना हमें दिखाई देती है। उन दोनों का एक-दूसरे के प्रति जो प्यार है वह वासनामय नहीं बल्कि भावनामय है।

2.3.2 विद्रोहिणी बायजाबाई -

सर्जेराव ने अपनी पुत्री की मन बहलाव के लिए तथा उस पर निगाह रखने के लिए रहीमन नाम की एक नर्तकी रखी है। लेकिन बायजाबाई का मन उस गीत संगीत में नहीं रमता। वह हर समय नरसिंह को पाने के लिए छट-पटा रही है। गोकुल की गोपियों की तरह मथुरा में ही विरह

की आग में जलना उसे पसंद नहीं है। वह बार-बार सरनाबाई से सवाल पूँछती, गोकुल की गोपियाँ कान्हा को ढूँढ़ने के लिए क्यों नहीं गई ? रोती क्यों रही दिन रात ? बायजा कहती है- ''सरनाबाई मैं वह नहीं करना चाहती, जो गोकुल की गोपियों ने किया। आँसुओं में नहीं डूबुंगी। ....मैं जाऊँगी उनके पास।''[92] इस तरह बायजा सरनाबाई के साथ घर छोड़कर नरसिंह के पास जाने के लिए तैयार होती है लेकिन उसी समय रहीमन सर्जेराव को लेकर आती है। बायजा खुशी से अपने मधुर मिलन का सपना देखकर खुशी से झूम उठी है। लेकिन सर्जेराव को सामने देखकर वह जहर की माँग करती है। ''बाबा ! मुझे जहर दे दीजिए।''[93] सर्जेराव बायजा के साथ छल-कपट करता है। उसे झूठ बोलता है। नरसिंह मारे जाने की खबर उतने ही विश्वास के साथ वह बायजा से कहता है, बायजा रोने लगती है। अपने प्रेमी की मृत्यु का समाचार वह सह नहीं सकती।

उपर्युक्त विवेचन के बाद बायजा की कुछ विशेषताएँ सामने आती हैं। पूरे नाटक में बायजाबाई नरसिंह की प्रेमिका के रूप में चित्रित की है। अपने प्यार को पाने की छटपटाहट उसमें दिखाई देती है। प्यार के लिए अपने प्राणों की आहुति देने के लिए वह तैयार है। गोपियों की तरह विरह की आग में जलन उसे पसंद नहीं। वह एक आदर्श प्रेमिका के रूप में हमारे सामने आती है। लेकिन सिंधिया के साथ उसकी शादी हो जाती है तब अपनी मर्यादाओं को वह कभी भी नहीं छोड़ती।

निष्कर्ष -

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि माथुरजी के चरित्र-सृष्टि यथार्थ है। उन्होंने अपने पात्रों के लिए जो नाट्य-संसार निर्मित किया वह उसके अनुरूप है। उनके पात्र एक प्रकार के विश्वसनीयता को उजागर करते हैं। क्योंकि वे जीवन के यथार्थ के व्यक्त रूप हैं, साथ-साथ नाटककार के स्वजात मानस-बिंब भी हैं। उनके पात्र यथार्थ जीवन के सुंदर और असुंदर, नैतिक और अनैतिक, सत् और असत् का भी अनुभव करता हुआ दिखाई देता है। वास्तविकता में जीवन के मूल स्वर को वाणी देते हैं। उनके पात्र इतिहास / मिथक की अंधकारपूर्ण गहराइयों से उभरकर कल्पना और अनुभूति के स्पर्श से स्फूर्त होते हैं। 'कोणार्क' में विशु और धर्मपद दोनों वर्गीय प्रतिनिधि के रूप में उभरते हैं जो 'शिल्पी के प्रतिशोध' अपने प्राण दे देते हैं। माथुर जी अपने पात्रों को विचार अथवा

समस्या से जोड़ने में विश्वास रखते हैं। 'कोणार्क' नाटक में चार प्रमुख पुरुष पात्र हैं- विशु, धर्मपद, नरसिंहदेव, राजराज चालुक्य। इसमें विशु महान कलाकार और कर्तव्यपरायण है। लेकिन वह कायर और यथार्थ से पलायन करता हुआ भी दिखाई देता है। धर्मपद भी सच्चा कलाकार है। वह स्वाभिमानी वीर युवक है। राजराज चालुक्य के अत्याचारों के विरूद्ध वह विद्रोही स्वर उठाते हैं। महाराजा नरसिंहदेव कलाप्रेमी और प्रजावत्सल राजा है। 'पहला राजा' नाटक में प्रमुख पात्र हैं पृथु और कवष। पृथु आर्यों का और कवष अनार्य जाति का प्रतिनिधि है। 'शारदीया' नाटक के प्रमुख पात्र नरसिंहराव राष्ट्रप्रेमी और हिंदू-मुस्लिम एकता चाहनेवाला है। प्रमुख स्त्री पात्रों में 'शारदीया' नाटक की बायजाबाई और 'पहला राजा' नाटक के अर्चना और उर्वी आती हैं। 'कोणार्क' नाटक में कोई स्त्री पात्र नहीं है। विशु की प्रेयसी और धर्मपद की माँ के रूप में सारिका नामक स्त्री पात्र नाटक में चर्चित होते हैं। नाटक में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है।

संदर्भ सूची

1. जगदीशचंद्र माथुर - कोणार्क , पृ. 34
2. वही, पृ. 35
3. वही, पृ. 35
4. वही, पृ. 27
5. वही, पृ. 26
6. वही, पृ. 42
7. वही, पृ. 30
8. वही, पृ. 32
9. वही, पृ. 32
10. वही, पृ. 33
11. वही, पृ. 35
12. वही, पृ. 29
13. वही, पृ. 67
14. वही, पृ. 14
15. वही, पृ. 73
16. वही, पृ. 35
17. वही, पृ. 57
18. वही, पृ. 35
19. वही, पृ. 53
20. वही, पृ. 34
21. वही, पृ. 51
22. वही, पृ. 58

23. वही, पृ. 35
24. वही, पृ. 53
25. वही, पृ. 40
26. वही, पृ. 76
27. जगदीशचंद्र माथुर - पहला राजा, पृ. 106
28. वही, पृ. 46
29. वही, पृ. 62
30. वही, पृ. 84
31. वही, पृ. 87
32. वही, पृ. 26
33. वही, पृ. 64
34. वही, पृ. 51
35. वही, पृ. 52
36. वही, पृ. 28
37. वही, पृ. 52
38. वही, पृ. 116
39. वही, पृ. 67
40. वही, पृ.
41. वही, पृ. 97
42. वही, पृ. 99
43. वही, पृ. 58
44. वही, पृ. 53
45. वही, पृ. 57-58
46. वही, पृ. 59

47. वही, पृ. 31
48. वही, पृ. 111
49. वही, पृ. 27
50. वही, पृ. 50
51. वही, पृ. 51
52. वही, पृ. 49
53. वही, पृ. 570
54. वही, पृ. 51
55. वही, पृ. 50
56. वही, पृ. 51
57. जगदीशचंद्र माथुर - कोणार्क, पृ. 50
58. वही, पृ. 52
59. वही, पृ. 39
60. वही, पृ. 39
61. वही, पृ. 79
62. वही, पृ. 26
63. वही, पृ. 50
64. जगदीशचंद्र माथुर - शारदीया, पृ. 23
65. वही, पृ. 27, 28
66. वही, पृ. 107, 108
67. वही, पृ. 43
68. वही, पृ. 44, 45
69. वही, पृ. 82
70. वही, पृ. 112

71. वही, पृ. 114
72. वही, पृ. 33
73. वही, पृ. 57
74. वही, पृ. 75
75. वही, पृ. 14
76. जगदीशचंद्र माथुर - पहला राजा, पृ. 37
77. वही, पृ. 38
78. वही, पृ. 36, 37
79. वही, पृ. 36
80. वही, पृ. 39
81. वही, पृ. 82
82. वही, पृ. 83
83. वही, पृ. 81
84. वही, पृ. 81
85. वही, पृ. 57
86. वही, पृ. 88
87. वही, पृ. 116
88. जगदीशचंद्र माथुर - शारदीया, पृ. 26
89. वही, पृ. 27
90. वही, पृ. 34
91. वही, पृ. 114
92. वही, पृ. 70
93. वही, पृ. 74